आधुनिक
भारत
के
निर्माता

भीमराव आम्बेडकर

डब्लू० एन० कुबेर

भीमराव आम्बेडकर

डब्लू० एन० कुबेर



आधुनिक भारत के निर्माता

भीमराव आम्बेडकर

लेखक

डब्लू० एन० कुबेर

अनुवादक

सीताराम खोड़ावाल

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

प्रथम संस्करण : अक्तूबर 1981 (आश्विन 1903)
द्वितीय संस्करण : अप्रैल 1990 (चैत्र 1912)

मूल्य : 17.00 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र • प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
- एल.एल.ए. आडीटोरियम, 736 अन्नासलै, मद्रास-600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001
- 10-बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226019
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004

तारा आर्ट प्रेस, बी-4 हंस भवन, नई दिल्ली-110002 द्वारा मुद्रित।

प्रस्तुत पुस्तकमाला

इस पुस्तकमाला का ध्येय भारत के उन सपूतों का चरित्र-चित्रण करना है जिनका राष्ट्रीय जागरण तथा स्वाधीनता-संग्राम में प्रमुख योगदान था। आने वाली पीढ़ियों को उनके विषय में जानकारी देना वांछनीय समझ कर इस पुस्तकमाला में उनकी जीवन-गाथा प्रकाशित की जा रही है। आशा की जाती है कि अब तक प्रकाशित ग्रंथों से यह अभाव बहुत कुछ दूर हुआ है। इन छोटी पुस्तकों के रूप में लब्धप्रतिष्ठ नेताओं की सरल संक्षिप्त जीवनियों को प्रकाशित किया जा रहा है। इनके लेखक अपने विषय की जानकारी रखने वाले योग्य व्यक्ति हैं। पुस्तको का आकार 200 से 300 पृष्ठों तक सीमित रखने का प्रयत्न किया गया है। इन ग्रंथों को विस्तृत अध्ययन की सामग्री उपलब्ध कराने की दृष्टि से नहीं लिखा गया है, न ही इनका उद्देश्य अन्य सांगोपांग जीवनियों का स्थान ग्रहण करना है।

यह वांछनीय था कि इन जीवनियों का प्रकाशन कालक्रम के अनुसार किया जाय— परन्तु ऐसा सम्भव प्रतीत नहीं हुआ। इसमें प्रमुख बाधा यह थी कि लेखन कार्य केवल ऐसे व्यक्तियों को सौंपना था जो अपने चरित्र-नायक के विषय में साधिकार लिखने में सक्षम थे। अतः ऐतिहासिक क्रम की इन जीवनियों के प्रकाशन में उपेक्षा अपरिहार्य जान पड़ी। परन्तु आशा यही की जाती है कि प्रायः लब्धप्रतिष्ठ सभी राष्ट्रीय नेताओं की जीवनियां स्वल्प-काल में पाठकों के सामने प्रस्तुत करने में हम सफल होंगे।

इस पुस्तकमाला के प्रधान सम्पादक श्री आर० आर० दिवाकर हैं।

अनुक्रमणिका

1. सामाजिक व्यवस्था ... 1
2. जन्म और प्रारम्भिक जीवन 8
3. शिक्षा ... 11
4. सामाजिक संघर्ष 20
5. पृथक निर्वाचन मण्डलों के लिए संघर्ष 30
6. बम्बई धारा सभा में 42
7. श्रम सदस्य 46
8. केबिनेट मंत्री ... 54
9. संविधान सभा में 60
10. विपक्षी नेता ... 64
11. बौद्ध धर्म में दीक्षा 67
12. अंतकाल 75
13. जीवन झांकी ... 77
14. भारत का सपना 94
15. सारसंक्षेप 99

अनुसूची 1 110

अनुसूची 2 113

अनुसूची 3 123

सामाजिक व्यवस्था

प्रोफेसर घुर्ये के अनुसार हिन्दू समाज व्यवस्था के मुख्य स्वरूप इस प्रकार हैं : (1) समाज का वर्ग विभाजन ; (2) ऊंच-नीच ; (3) खान-पान और सामाजिक सम्मिश्रण पर प्रतिबंध ; (4) कुछ वर्गों का सामाजिक और धार्मिक तिरस्कार और कुछ को विशिष्टाधिकार ; (5) व्यवसाय चयन में स्वाधीनता पर रोक ; और (6) विवाह सम्बन्धों पर प्रतिबंध—(6) अपने वर्ण से बाहर विवाह न करना जाति प्रथा का सार है।[1]

हिन्दू समाज का मूल आधार वर्ण व्यवस्था है। वर्ण का अर्थ केवल सामाजिक वर्ग विभाजन ही नहीं है बल्कि एक सुगठित जीवन प्रणाली है जिसका संबंध हमारे खान-पान, विवाह संस्कार, शिक्षा, संगठन और पूजा-पाठ से है। वर्ण व्यवस्था जन्मगत बनाई गई है। स्वजाति विवाह संबंध इसका आधार है जो सामान्यत: प्रादेशिकता से भी प्रभावित है, जिसका परम्परागत संबंध किसी एक व्यवसाय से है और स्थानीय जातिगत ऊंच-नीच में जिसका एक विशेष स्थान होता है। एक जाति का दूसरी के साथ संबंध स्थापित होने में अन्य बातों के अतिरिक्त रक्त शुद्धता तथा शुचिता का ध्यान रखा जाता है और सहभोज सामान्यत: स्वजाति के बीच ही होते हैं।

डा० एम० एन० श्रीनिवास का मत है कि जाति प्रथा के तीन मुख्य शस्त्र हैं—धार्मिक संस्कार, आर्थिक और राजनैतिक शक्तिस्रोत। इनमें से किसी एक भी क्षेत्र में प्राप्त शक्ति आमतौर पर दूसरे क्षेत्र पर भी स्वामित्व स्थापित कराने में सहायक हो जाती है।[2]

जाति प्रथा के मूल सिद्धांतों का सार यह है: (1) जन्म के आधार पर मनुष्यों में असमानता ; (2) व्यवसायगत असमानता ; और (3) चारों मुख्य वर्णों में पूर्ण एवं कठोर सामाजिक विभाजन और उनकी उपजातियों के मध्य उतना ही कठोर भेदभाव। ब्राह्मण की श्रेष्ठता को प्रश्रय दिया गया है। इस पूरी व्यवस्था के अंतर्गत संक्षेप में कहा जा सकता है ''जाति प्रथा एक सामाजिक साम्राज्यवाद है जो

1 जी० एस० घुर्ये—कास्ट एण्ड क्लास

2 एम० एन० श्रीनिवास, कास्ट इन मार्डन इण्डिया एण्ड अदर एसेज

आचार से पनपा है और जिसको धार्मिक संरक्षण प्राप्त है।[3] यह प्रथा सामंतवादी युग में बड़ी मुस्तैदी से चली जबकि अर्थ-व्यवस्था जड़ीभूत-सी थी जिसमें एक व्यक्ति अपना व्यवसाय परिवर्तन नहीं कर सकता था। इसको प्रायः सभी ने स्वीकार किया है और हर जगह यह सामाजिक क्रिया की इकाई है।

अस्पृश्यता जातिवाद का ही कड़वाफल है, यह कोई अलग प्रथा नहीं है। हिन्दू समाज में अछूतों का दर्जा बहुत नीचे रहा है। वे सदियों से इस अवस्था में जीते आ रहे हैं। सवर्ण हिन्दू किसी अछूत को छूना पाप समझते थे, उनकी छाया पड़ने और आवाज सुनने मात्र से अशुचिता लगती थी। उन पर यह भी प्रतिबंध थे कि वे कौन-से जानवर पाल सकते हैं और किस धातु के जेवरों का इस्तेमाल कर सकते हैं। उन्हें गांव के बाहर नारकीय गंदगी में रहने के लिए विवश किया जाता था। उनकी दशा दयनीय थी। वे कुओं से पानी नहीं भर सकते थे और उनके बच्चे उन स्कूलों में नहीं जा सकते थे जिनमें सवर्णों के बच्चे पढ़ते थे। मंदिरों के दरवाजे उनके लिए बंद थे। नाई उनके बाल नहीं काटते थे और धोबी उनके कपड़े नहीं धोते थे। सवर्ण हिन्दू उन्हें जानवरों से बदतर समझते थे। सरकारी नौकरियों के दरवाजे, जिनमें पुलिस और सेना की नौकरियां भी सम्मिलित हैं, उनके लिए बंद थे। वे बेचारे अपने परम्परागत अपमानजनक व्यवसाय करने के लिए विवश होते थे। सामाजिक कुप्रथाओं ने उन्हें आजीवन अछूत बनाए रखा। वे सामाजिक रूप से अंत्यज, आर्थिक दृष्टि से विपन्न और राजनैतिक रूप से उच्च जातियों के दास बनकर रह गए। शिक्षा उनके लिए आकाश कुसुम रही और संस्कृति गहरा अंध कूप। वे बेचारे अछूत पैदा हुए, अछूत बने जीते रहे और मरकर भी इस पैशाचिक प्रथा से मुक्ति न पा सके।

पृथ्वी पर ब्राह्मण को देवता कहा जाता था। उन्हें भू-राजस्व से शाश्वत मुक्ति प्राप्त थी और घोर से घोर पाप के लिए भी ब्राह्मण अवध्य था। चतुर्वर्णीय समाज व्यवस्था का जो प्रसंग "पुरुष सूक्त" में वर्णित है उसमें न केवल जातियों की संरचना वरन् समाज-व्यवस्था का धार्मिक औचित्य दर्शाया गया है।[4] प्रोफेसर घुर्ये का मत है कि कुलीन वर्गों के लिए विशेषाधिकार और निम्न वर्गों के लिए प्रतिबंध वर्ण-व्यवस्था का शाश्वत सिद्धांत रहा है। जीवन के हर क्षेत्र में धर्म का प्रभुत्व विद्यमान था। सामाजिक व्यवस्थाओं का मोटे तौर पर शासन से कोई सरोकार नहीं था।

मध्यकालीन भारत में मुस्लिम शासन काल में शूद्रों और अछूतों को शिक्षा, समानता और स्वतंत्रता के मानवीय अधिकार प्राप्त नहीं थे। मुस्लिम शासकों ने केवल सवर्ण हिन्दुओं को ही सरदार या सामंत नियुक्त किया और अछूतों को कोई

---

3 के० एम० पणिकर, कास्ट एण्ड डेमोक्रेसी

4 जी० एस० घुर्ये—कास्ट एण्ड क्लास

ऐसा सम्मान प्रदान नहीं किया। इन शासकों ने सोचा कि यदि हम इन लोगों को भी कुछ अधिकार दे देंगे तो हमें उच्चवर्णीय हिन्दुओं के कठोर विरोध का सामना करना पड़ेगा। मराठा राज्य में भी महारों को कोई सम्मान नहीं दिया गया यद्यपि उन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध में बहुत जौहर दिखाए थे। यहां तक कि शिवाजी महाराज भी अस्पृश्यता से समाज को मुक्ति नहीं दिला पाए।

महात्मा बुद्ध के समय (500 ई० पू०) से ही हिन्दू समाज को अस्पृश्यता से छुटकारा दिलाने के लिए प्रयत्न किए जाते रहे हैं। छुआछूत को उखाड़ फेंकने के लिए वैचारिक एवं आध्यात्मिक आंदोलन सदियों तक चलते रहे। चक्रधर, रामानन्द, चैतन्य, कबीर, एकनाथ और अन्य संतों ने आध्यात्मिक सामानता और भक्ति आंदोलन शुरू करके इस दिशा में सफलता प्राप्त की थी। ईसाई धर्म के आने से भी अछूतों को कोई लाभ नहीं मिला। इन लोगों की सामाजिक और आर्थिक दशा जैसी की तैसी ही बनी रही। ब्रिटिश शासन काल में भी जाति प्रथा का अभिशाप अंगद के पैर की तरह जमा रहा। ईसाई मिशनरी भी जातिवाद के अत्याचारों को नष्ट करने, आर्थिक शोषण रोकने और राजनैतिक दासता से मुक्ति दिलाने में पूरी तरह असफल रहे।

ब्रिटिश शासन काल में ही अछूत हिन्दू समाज के लिए एक समस्या बने। समाज पर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव केवल राजनैतिक क्षेत्र तक ही सिमटा न रहा। क्योंकि भारतीय समाज व्यवस्था लोकतंत्र के सिद्धांतों के सर्वथा प्रतिकूल थी अतः इसकी धज्जियां उड़नी शुरू हो गईं। सरकार की परिकल्पना पश्चिमी दृष्टिकोण के अनुसार वयस्क मताधिकार पर आधारित हुई। लोकतंत्र का तत्व है—समान अधिकार और सुविधाएं।

भारत में नए सम्प्रदायों के प्रादुर्भाव के साथ-साथ समाज सुधार आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इन नए सम्प्रदायों के नेता स्वतंत्रता, संसदीय लोकतंत्र और इस आस्था से अभिभूत थे कि सभी मानव भगवान की दृष्टि में और कानून की परिधि में एक समान हैं। सुधारकों का उद्देश्य सामाजिक समानता के आधार पर नई समाज व्यवस्था बनाना था। समाज सुधारकों ने आवाज उठाई कि जाति प्रथा की अलोकतांत्रिक भावना का लोकतंत्र में कोई स्थान नहीं है। टैगोर ने कहा, जब तक समाज में अन्याय व्याप्त है तब तक राजनीति में न्याय की बात मृगतृष्णावत् होगी। समाज सुधारकों का कहना था कि छोटी बड़ी सभी जातियों के लोगों को कानून, शिक्षा, राजनीति और अन्य क्षेत्रों में समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए। ब्रिटिश शासन में ब्राह्मण और शूद्र न्याय की दृष्टि में बराबर का दर्जा रखते थे।

इसका अर्थ है कि सामाजिक परिवर्तन का सूत्रपात हो चुका था। लेकिन नए

परिपेक्ष्य में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ क्या है? "सामाजिक परिवर्तन का अर्थ यह हो सकता है कि किसी समाज विशेष में ऐसे ठोस परिवर्तन किए जाएं जिनका प्रभाव दृष्टिगत हो।[5] श्रीनिवास के अनुसार संस्कृतिकरण और पश्चिमीकरण के माध्यम से परिवर्तन आया। भारत की आधुनिक परिस्थितियों में ये दोनों परस्पर संबंधित हैं और एक को समझने के लिए इनमें से दूसरी स्थिति का ज्ञान होना आवश्यक है। जब हम संस्कृतिकरण की बात करते हैं तो वहां परिवर्तन का अर्थ है जाति परिधियों के अन्दर रहकर चलना लेकिन जब पश्चिमीकरण का सवाल उठता है तो उसमें जाति प्रथा का कोई स्थान नहीं है। संस्कृतिकरण आर्थिक और राजनैतिक अधिकार प्राप्ति के अभाव में ही संभव है। श्रीनिवास का मत है कि संसदीय लोकतंत्र जैसी पश्चिमी राजनैतिक मान्यताओं को जन्म देकर अंग्रेजों ने देश के संस्कृतिकरण को प्रोत्साहन दिया लेकिन संस्कृतिकरण से सुसंस्कृत जाति का जातीय स्तर फिर भी नहीं बढ़ा और इसका प्रमाण हैं भारत के अछूत।[6]

श्रीनिवास के अनुसार प्रभुतासम्पन्न जातियों के नेता आर्थिक और राजनैतिक अधिकारों के प्रति तो जागरूक हैं पर जब सामाजिक अधिकारों का समय आता है तो उनकी रूढ़िवादी प्रवृतियां अपना शिकंजा तनिक भी ढीला नहीं करतीं। उदाहरणार्थ, हरिजनों की दशा सुधारने में उनकी कोई रुचि नहीं है। हरिजनों का निर्धन और अनभिज्ञ रहना ही उनका हित साधन है। आजकल अधिकतर खेत मजदूर हरिजन हैं और यदि वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो उठते हैं तो इन प्रभावी जातियों के लिए एक चुनौती बन सकते हैं।[7] ऊंची जातियों के नेता अपने हित साधन तक ही जातीय समानता का ढोंग रचते हैं जैसे वैश्य और ब्राह्मण के बीच समानता का राग अलापना। लेकिन जहां तक हरिजनों को बराबरी का दर्जा देने का सवाल है, वहां ये सभी चाहते हैं कि उन्हें जहां का तहां पड़ा सड़ने दो।[8]

ब्रिटिश शासन में ही प्रशासनिक दृष्टि से देश एक सूत्र में बंध पाया था। डेढ़ सौ साल के तकनीकी विकास के साधनों से प्रशासनिक संचार साधनों का एक ऐसा तंत्र बना जिससे सारा देश एक साथ जुड़ सका। ब्रिटिश शासन ने ही ऐसी अर्थव्यवस्था को जन्म दिया जिससे परम्पराओं की जंजीरों से जकड़ी जातियों के बन्धन चरमरा उठे और बढ़ते हुए आर्थिक परिवर्तनों ने सामाजिक परिवर्तनों का मार्ग प्रशस्त किया। प्रगतिमान आर्थिक उथल-पुथल से भी उन्हीं जातियों को लाभ

---

5 बी० कुप्पस्वामी—सोशल चेंज इन इण्डिया

6 एम० एन० श्रीनिवास

7 यथोपरि

8 यथोपरि

हुआ जो पहले से ही सम्पन्न और सम्मानित थीं। श्रीनिवास का विचार है कि अंग्रेजों द्वारा पिछड़ी जातियों को प्रोत्साहन देने का कार्य भी मानवीय आधार पर किया गया। इसका यह प्रभाव पड़ा कि पिछड़ी जातियां अपने संरक्षण के लिए ब्रिटिश सरकार से कुछ आशाएं रखने लगीं। इसने छोटी और बड़ी कही जाने वाली जातियों के बीच एक पच्चर का कार्य किया।[9] अंग्रेजों की नीति यह थी कि अपने राजनीतिक प्रभुत्व को बनाए रखने के लिए वे सामाजिक मध्यमार्ग अपनाए रहें।

ब्रिटिश शासन में जो सामाजिक तथा धार्मिक आंदोलन शुरू हुए उनमें छुआछूत निवारण भी एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम था। पर शासकों का रवैया हरिजनों के प्रति विशेष उत्साहवर्धक नहीं था। सरकार उच्च कहलाने वाली जातियों का पारा चढ़ाना नहीं चाहती थी। जहां तक हुआ, अंग्रेजों ने इस संबंध में बचकर चलना ही बेहतर समझा। इसके साथ ही उच्च सरकारी पदों पर जो भारतीय थे, उनमें ब्राह्मणों का ही बाहुल्य था।

भारत में बौद्धिक पुनर्जागरण का भी आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय भावना के विकास में महत्वपूर्ण हाथ रहा है। इस प्रवृत्ति का मूल स्रोत भी नैतिक और आत्मिक आकांक्षाएं थीं। इस पुनर्जागरण पर पुनरुत्थानवाद की स्पष्ट छाप थी। सबसे बड़ा सुधारवादी आंदोलन ब्रह्मसमाज था जिसे हिन्दू ईसाई मत का सम्मिश्रण समझा जाता है। राममोहन राय (1772–1833), देवेन्द्रनाथ ठाकुर (1817–1905) और केशवचन्द्र सेन (1838–1884) ब्रह्म समाज के नेता थे जिन्हें एकेश्वरवाद, आध्यात्मिक बुद्धिवाद और उपनिषदों के अद्वैतवाद तथा ईसाइयों की धार्मिक आराधना का सम्मिश्रण कहा जा सकता है।[10] इसने मानव मानव के बीच भ्रातृत्व भाव की प्रेरणा दी। बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई जिसने जातपांत को तिलांजलि दी। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की नींव डाली जो प्राचीन वैदिक संस्कृति के उद्धार से उत्प्रेरित था। यह भी जन्म के आधार पर जाति निर्धारण के विरुद्ध है। आर्य समाज ने भी समाज सुधार की हिमायत की। रामकृष्ण मिशन के धर्मार्थ कार्य और थियोसोफिकल सोसायटी की सेवाएं भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं। हिन्दू समाज के व्यवहार में सुधार के लिए इन सभी आंदोलन या संस्थाओं ने अपने-अपने तरीके से महत्वपूर्ण सेवाएं कीं। इनके नेताओं को राजनैतिक पिछड़ेपन की समस्याओं के साथ जूझने के अतिरिक्त जिन अन्य कुरीतियों से लोहा लेना पड़ा, वे थीं—जाति प्रथा, छुआछूत, बाल-विवाह, विधवा-विवाह और महिलाओं का उद्धार। एक कटु विवाद यह भी छिड़ गया कि क्या सामाजिक सुधारों को राजनैतिक सुधारों

9 यथोपरि

10 वी० पी० वर्मा—मार्डन इण्डियन पोलिटिकल थाट

ग भी प्रमुख स्थान दिया जाए। इस विवाद के प्रणेताओं में जो प्रमुख व्यक्ति थे उनमें रानडे, आगरकर और डा० भाण्डारकर ने समाज सुधार को प्राथमिकता देने की हिमायत की। तिलक राजनैतिक सुधारों के पक्षधर थे।

मैकाले के नेतृत्व में चले पश्चिमीकरण अभियान से शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन आए। पाश्चात्य शिक्षा ने भारत में बौद्धिक और राजनैतिक जीवन के नए तत्वों का सूत्रपात किया। पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित होकर देश में सामाजिक और धार्मिक सुधारों में अग्रगण्य नेताओं में महाराष्ट्र से भाण्डारकर, एम० जी० रानडे, चिपलूणकर, तिलक, आगरकर. गोखले, बंगाल से टैगोर, अरविंद, विवेकानन्द, जे० सी० बोस, प्रफुल्लचन्द्र राय, मद्रास से विजयराघवाचार्य, पंतुलू, रंगैया नायडू, जी० सुब्रह्मण्य अय्यर और पंजाब से हंसराज, श्रद्धानंद तथा लाला लाजपतराय के नाम उल्लेखनीय हैं। महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिबा फुले ने सामाजिक समानता का आंदोलन चलाया। उन्होंने 1873 में सत्य शोधक समाज की स्थापना की। फुले ने जाति प्रथा के विरुद्ध विद्रोह किया क्योंकि इस प्रथा के कारण ही हिन्दू समाज के सभी सदस्यों को मानवीय अधिकार नहीं मिल पाए थे। फुले ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने जन-मानस में आत्म-विश्वास का संचार किया।

ब्रिटिश शासन में जो सामान्य राष्ट्रीय लोकतांत्रिक चेतना आई उसीके अंतर्गत दलित जातियों में राजनैतिक चेतना का उदय हुआ और उन्हें अपने बुनियादी अधिकारों का अहसास हुआ। उच्च जातियों द्वारा मानव हित के कार्यों का संचालन और दलित जातियों के विद्रोहात्मक संघर्ष को बढ़ाने की प्रक्रिया भारत के समाज सुधार आंदोलन की पृष्ठभूमि बनी। छुआछूत निवारण राष्ट्रीय आंदोलन का एक अंग बन गया। 1920 में महात्मा गांधी ने घोषणा की कि राष्ट्रीय कार्यक्रमों में अस्पृश्यता निवारण को सर्वोच्च स्थान देना होगा। इस कलंक को धोए बिना स्वराज्य बेकार है।

रेल और बसों का प्रचलन, आधुनिक उद्योगों की स्थापना, जिनमें छूत-अछूत सभी भर्ती किए जाने लगे, ऐसे जलपान गृह, जहां सभी वर्गों के लोग आने लगे, और जाति भावना के स्थान पर नवीन वर्ग भावना का प्रादुर्भाव आदि ऐसे कुछ तत्व हैं जिन्होंने जातीय असमानताओं और जातिगत भेदभाव को मिटाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। शिक्षा के प्रसार से इस दिशा में और प्रगति हुई। इससे बुद्धिजीवियों और उत्साही स्वतंत्रता सेनानियों का एक वर्ग उभरकर सामने आया जो उनके मूलभूत मानवीय अधिकारों तथा राजनैतिक मांगों की पूर्ति के लिए लड़ा।

18 अक्तूबर, 1906 को न्यायाधीश सर एन० जी० चन्दावरकर के नेतृत्व में 'डिप्रेस्ड क्लासेज़ मिशन सोसायटी ऑफ इण्डिया' की स्थापना हुई। 11 नवम्बर

1917 को सर चन्दावरकर की अध्यक्षता में दलित जातियों का एक सम्मेलन बुलाया गया। सम्मेलन ने सरकार के सामने अछूतों की मांगें पेश कीं। 1917 में कांग्रेस के सम्मेलन में पास किए गए प्रस्ताव में इन मांगों को भी शामिल कर लिया गया। 1920 तक सामाजिक कार्यकर्ता केवल मानवीय भावनाओं से अभिभूत थे। अस्पृश्यता निवारण आंदोलन के लिए बी० आर० शिन्दे और शिवराम काम्बले ने भूमिका तैयार की। बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव और कोल्हापुर के साहू छत्रपति ने इस आंदोलन में सहायता दी।

जन्म और प्रारम्भिक जीवन

हिन्दू समाज के अछूत समुदाय में महार जाति एक ऐसी जाति है जो शक्तिशाली, समझदार, लड़ाकू और बहादुर कही जा सकती है। कुछ लोगों का विचार है कि महार ही महाराष्ट्र के मूल निवासी हैं। महाराष्ट्र महार-राष्ट्र से ही बना है। भारत में यूरोपियन सबसे पहले महारों के ही संपर्क में आए। वे सेना में भर्ती हुए। लेकिन 1892 ई० में सेना में महारों की भर्ती बंद कर दी गई। आम्बेडकर के पिता रामजी ने इस अन्याय का विरोध किया। उन्होंने एम० जी० रानडे से सम्पर्क स्थापित किया और बम्बई के गवर्नर से मुलाकात की। 6 फरवरी 1917 को वह आदेश रद्द कर दिया गया जिसके अनुसार अछूतों की भर्ती बंद कर दी गई थी और प्रथम विश्व युद्ध (1914–1918) के दौरान महार बटालियन (111) की स्थापना की गई।

अछूतों और विशेषकर महारों में तीन प्रमुख भक्ति शाखाएं थीं। ये थीं—कबीर पंथ, रामानंदमत और नाथ सम्प्रदाय। 1896 ई० में रामजी आम्बेडकर कबीर के अनुयायी बन गए। भक्ति आंदोलन का मूलमंत्र दया, परोपकार और ईश्वर के प्रति समर्पणभाव था। कबीर ने जाति प्रथा को दुतकारा था इसलिए जिन अछूतों ने जातिप्रथा की अवर्णनीय यातनाएं झेली थीं, वे कबीर के भक्त बन गए।

आम्बेडकर के पितामह मालोजी सकपाल रत्नागिरी जिले के एक अच्छे महार परिवार के सदस्य थे। वह एक अवकाश प्राप्त सैनिक थे। रामजी ने भी सेना से ही अवकाश प्राप्त किया। उनके 14 बच्चे थे। उनके सबसे छोटे पुत्र भीमराव का जन्म 14 अप्रैल 1891 को मध्य भारत में मह् में हुआ। रामजी सूबेदार मेजर बन गए थे और वे 14 साल तक सैनिक स्कूल में मुख्य अध्यापक रहे। 1891 में सेना से अवकाश प्राप्त करके वे 50 रुपए मासिक पेंशन पाने लगे और उन्होंने रत्नागिरी में लोकनिर्माण विभाग में स्टोरकीपर के रूप में फिर नौकरी कर ली। बाद में उनका तबादला सतारा हो गया।

सन् 1900 में भीमराव सतारा के सरकारी हाई स्कूल में प्रथम कक्षा में दाखिल हुए। स्कूल में उनका नाम भीवा रामजी अम्बावेडकर लिखा गया। उनके परिवार का कुलनाम सकपाल था। परंतु उनके पूर्वजों ने यह बेहतर समझा कि

कुलनाम अपने पुश्तैनी गाँव के ऊपर रखा जाए जिसका नाम अम्बावाडे था। यह गाँव रत्नागिरी जिले के खड़े ताल्लुका में है। सतारा हाई स्कूल में आम्बेडकर नाम के एक अध्यापक थे जो भीमराव को अत्यधिक प्यार करते थे और अक्सर उन्हें खाना भी खिलाया करते थे। यह अध्यापक बहुत ही कृपालु और दयावान थे। इसलिए अपने अध्यापक के प्रति श्रद्धा और सम्मान प्रकट करने के लिए भीमराव ने अपना नाम आम्बेडकर रख लिया और जिस अध्यापक ने उनके छात्र जीवन में उन्हें इतना दुलार दिया उसका वे आजीवन आभार मानते रहे। जब आम्बेडकर गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने गए तो उस अध्यापक ने उन्हें बधाई पत्र लिखा था।

छुआछूत का प्रहार कितना भीषण है इसका अहसास आम्बेडकर को छात्र जीवन से ही हो गया था। एक गाड़ीवान ने उन्हें और उनके भाई को अपने साथ गाड़ी में नहीं बैठने दिया था। आम्बेडकर और उनका भाई मसूर रेलवे स्टेशन से गोरे गांव जा रहे थे। उन्होंने एक गाड़ी भाड़े पर तय की। अभी गाड़ी कुछ ही गज चली थी कि गाड़ीवान को यह पता चल गया कि ये लड़के किस जाति के हैं। उसने जाने से इंकार कर दिया। इन दोनों बच्चों ने गाड़ी वाले को दुगना किराया दिया। भीमराव के बड़े भाई ने गाड़ी हांकी और गाड़ीवान पीछे-पीछे पैदल चला कि कहीं उसे छूत का भूत न चढ़ जाए। पूरे रास्ते उन्हें पीने के लिए पानी तक नहीं मिला। आम्बेडकर को अब पता चला कि वे ऐसी अभागी जाति में पैदा हुए हैं जिसे छूना पाप है। एक और कटु अनुभव यह था कि कोई नाई उनके बाल नहीं काटता था और भीम की बहन को ही उसके बाल काटने पड़ते थे। अछूतों के लिए यह निरादर भाव सर्वत्र व्याप्त था। यह अपमानजनक और अमानवीय व्यवहार जो उनके सहधर्मी छात्रों ने स्कूल में उसके साथ किया, शायद यही कारण था कि हिन्दुओं और हिन्दू धर्म के प्रति उनके मन में असीम घृणा का भाव पैदा हुआ। जन्म से अछूत होने के कारण आम्बेडकर को कक्षा में अलग बैठना पड़ता था। वह अन्य छात्रों के साथ न मिल-जुल सकते थे और न ही खेल सकते थे। अध्यापक उनकी कापी नहीं छूते थे। कुछ तो अछूत लड़कों से कविता पाठ सुनने और प्रश्न पूछने से भी छूत लग जाने के भय से जी चुराते थे। स्कूल में जब इन लड़कों को प्यास लगती थी तो वे ऊपर की तरफ मुंह कर लिया करते थे और फिर कोई दया करके उनके मुंह में इस प्रकार पानी डाल दिया करता था जैसे किसी कुप्पी में डाल रहा हो। अछूतों को संस्कृत पढ़ने की मनाही थी। संस्कृत शिक्षक बड़ा ही कट्टर था और वह अछूत बच्चों को नहीं पढ़ाता था। हाई स्कूल परीक्षा के समय आम्बेडकर को दूसरी भाषा के रूप में फारसी को चुनना पड़ा।

1904 में जब सतारा में रामजी की नौकरी समाप्त हो गई तो उन्हें बम्बई

जाना पड़ा। भीमराव ने सरकारी संस्थान एलिफिंस्टन हाई स्कूल में दाखिला लिया। सतारा में वे महार होने के कारण क्रिकेट नहीं खेल सकते थे परंतु बम्बई में इस तरह की कोई पाबन्दी नहीं थी। यहां वे जी भर कर खेल सकते थे। सवर्ण जातियों के बच्चे अपने खाने के डिब्बे ब्लेक बोर्ड के पीछे रखा करते थे। एक दिन आम्बेडकर को ब्लेक बोर्ड पर कुछ लिखने का आदेश दिया गया। इस पर सवर्ण जातियों के बच्चे ब्लेक बोर्ड के पीछे से अपने खाने के डिब्बे हटाने के लिए दौड़े कि कहीं उसमें छूत न घुस जाए। अध्यापकों ने भी भीमराव को हतोत्साह किया।

आम्बेडकर ने 1907 में हाई स्कूल परीक्षा पास की। उनके परिवार के लिए यह एक अभूतपूर्व दिन था। अछूत जाति के एक विद्यार्थी द्वारा मैट्रिक की परीक्षा पास करना एक बहुत बड़ी बात थी। सत्यशोधक आंदोलन के एक नेता एस० के० ए० बोले के नेतृत्व में एक समारोह किया गया। के० ए० केलुस्कर ने, जिन्होंने बाद में शिवाजी का वृहद् जीवन चरित भी लिखा, आम्बेडकर को गौतम बुद्ध की एक जीवनी भेंट की।

उनके छात्र जीवन की एक उल्लेखनीय घटना उनका विवाह भी था। जब रामाबाई नामकी 9 वर्षीय सुशील बालिका के साथ उनका विवाह हुआ उस समय वे केवल 14 साल के थे और पांचवी कक्षा में पढ़ते थे।

शिक्षा

बड़ौदा के प्रगतिशील शासक महाराजा सयाजी राव ने घोषणा की थी कि उच्च शिक्षा के लिए लालायित किसी भी उदीयमान अछूत छात्र को सहायता दी जाएगी। आम्बेडकर ने इस घोषणा का लाभ उठाया और एलफिंस्टन कालिज में दाखिला ले लिया। उन्हें 25 रुपए महीने की छात्रवृत्ति मिली।

प्रोफेसर मूलर उन्हें अपनी पुस्तकें और कपड़े भी दे देते थे। लेकिन अपमान के दैत्य से अभी भी उनको मुक्ति नहीं मिली थी। कालेज के होटल का मालिक एक ब्राह्मण था। वह उन्हें न चाय देता था और न पानी। आम्बेडकर ने अपमान के कड़ुवे घूंट पिए, पर असुविधाओं के सामने घुटने नहीं टेके। उन्होंने लगन से पढ़ाई की और सन् 1912 में अंग्रेजी और फारसी विषयों में बी० ए० की परीक्षा पास कर ली। यद्यपि वे एक विद्वान के रूप में विख्यात हुए, पर कालेज परीक्षाओं में उन्हें कोई श्रेणी नहीं मिली।

स्नातक बनने के बाद आम्बेडकर ने बड़ौदा सरकार की नौकरी कर ली। उनके पिता को यह बात पसंद न थी। बड़ौदा राज्य में बड़े-बड़े सरकारी पदों पर कट्टरपंथी सवर्ण हिन्दू आसीन थे। छूत का भय इस हद तक मौजूद था कि चपरासी तक उनकी मेज पर फाइलें रखने से बचते थे। वे उन्हें दूर से ही फेंका करते। किसी अच्छे इलाके में उन्हें किराए का मकान नहीं मिल सका। वे एक आर्य समाजी पण्डित आत्माराम के यहां ठहरे। सामाजिक परिस्थितियां इतनी प्रतिकूल और असहनीय थीं कि उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी।

2 फरवरी 1913 को उनके पिता का देहांत उनके लिए शोकजनक था। उनके पिता रामजी ने उनकी शिक्षा पर इतना धन खर्च किया था कि वे कर्ज से लद गए थे। उनको यह देखना भी नसीब नहीं हो सका कि उनका बेटा उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश जा रहा है।

कुछ दिन बाद आम्बेडकर को एक नया मौका मिला। महाराजा बड़ौदा ने कोलम्बिया विश्वविद्यालय में उच्च अध्ययन के लिए कुछ छात्रों को अमरीका भेजने के विषय में विचार किया। महाराजा ने आम्बेडकर को कोलम्बिया विश्वविद्यालय भेजने का निश्चय किया। 4 जून, 1913 को उन्होंने बड़ोदा के अधिकारियों के साथ

एक समझौता किया और उसी साल जुलाई के तीसरे सप्ताह में 'गायकवाड़ स्कालर' की हैसियत से विश्वविद्यालय में दाखिला ले लिया। किसी विदेशी विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने वाला यह पहला महार छात्र था। एक भारतीय और विशेष रूप से एक अछूत छात्र के लिए यह एक अपूर्व अवसर था।

आम्बेडकर एक अन्तर्राष्ट्रीय क्लब में रहने लगे जहाँ कुछ भारतीय छात्र भी रहते थे। वहां वे स्वच्छंद थे। वहाँ उन्हें समानता की शीतल सुगंधित पवन में सांस लेने का अवसर मिला। हीनता की घुटन दूर हो गई थी। यह एक नया संसार था और यहां आकर उनका मानसिक विकास हुआ।

विख्यात अर्थशास्त्री प्रोफेसर सेलिगमैन उनके अध्यापक थे। जून 1915 में उन्हें 'प्राचीन भारतीय व्यापार' थीसिस पर एम० ए० की डिग्री मिली। डा० गोल्डेर वीज़र द्वारा नृवंश विज्ञान पर आयोजित विचार गोष्ठी में आम्बेड़कर ने मई 1916 में एक निबंध पढ़ा, उसका विषय था 'द कास्ट्स इन इण्डिया, देयर मिकेनिज़्म, जेनेसिस एण्ड डेवलपमेंट'। मई, 1917 में 'इण्डियन एंटीक्वेरी' में इसका प्रकाशन हुआ। पुस्तक के रूप में भी यह लेख छपा। आम्बेडकर की यह प्रथम प्रकाशित रचना थी। इस लेख में उन्होंने कहा है कि जाति विहित विवाहों पर प्रतिबंध ही हिन्दू धर्म का सार है। उनके विचार में जाति एक संकुल वृत है और इसका जन्म मनु से भी पूर्व हो चुका था जिसे वे एक ढीठ व्यक्ति और पिशाच मानते हैं। उनके विचार से मनु ने केवल पहले से मौजूद जाति सम्बन्धी हिन्दू विधि विधान को संगृहीत किया।

महान राष्ट्रीय नेता लाला लाजपतराय उस समय अमेरिका में प्रवास कर रहे थे। वे प्रतिदिन कालेज पुस्तकालय जाया करते थे जहाँ आम्बेडकर भी अध्ययन किया करते थे। उन्हें पता चला कि यह भारतीय छात्र महार—एक अछूत है, लालाजी उतने ही उग्र समाज सुधारक थे जितने एक राजनीतिज्ञ। उन्होंने आम्बेडकर के साथ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के बारे में विचार विमर्श किया।

जून 1916 में आम्बेडकर ने पी० एच० डी० के लिए थीसिस प्रस्तुत की जिसका शीर्षक था "नेशनल डिविडेंड फॉर इण्डिया: ए हिस्टोरिक एण्ड अनैलेटिकल स्टडी"। आठ साल बाद 'द इवोलूशन ऑफ प्रोविंशियल फाइनेंस इन ब्रिटिश इण्डिया' के नाम से यह थीसिस एक पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई। यह पुस्तक महाराजा सयाजीराव को समर्पित की गई थी और इसकी प्रस्तावना प्रो० एस० ए० सैलिगमैन ने लिखी थी। इसमें प्रो० सैलिगमैन ने कहा है—"मेरे विचार में अधोगत सिद्धांतों का इतना विस्तृत विवेचन कहीं और नहीं मिलेगा।" इस ग्रंथ में डा० आम्बेडकर ने कहा है कि पूरी आर्थिक नीति ब्रिटिश उद्योगों और उद्योगपतियों के हित साधन के लिए है। आम्बेडकर ने यह भी निष्कर्ष निकाला था कि हर देश में

सामाजिक उत्पीड़न और अन्याय मौजूद हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं कि किसी देश में राजनैतिक सत्ता का अस्तित्व ही न हो। यह पुस्तक इतनी उपयोगी थी कि बजट अधिवेशन के दौरान हर भारतीय विधायक इसका उद्धरण दिया करता था। विद्यार्थियों के लिए तो यह ज्ञान की कुंजी थी। जब भारतीय मुद्रा के बारे में वे हिल्टन यंग आयोग के सामने वक्तव्य देने गए तो यह देखकर उनकी छाती गर्व से फूल गई कि आयोग के हर सदस्य के पास उनकी यह पुस्तक संदर्भ ग्रंथ के रूप में मौजूद थी।

1916 में आम्बेडकर कोलम्बिया विश्वविद्यालय से 'लंदन स्कूल ऑफ इकानोमिक्स एण्ड पोलिटिकल साइंस' में अध्ययन के लिए गए। प्रोफेसर सेलिगमैन ने उनका परिचय प्रो० कैनन और सिडनी वेब से कराने के लिए उन्हें पत्र दिए। अक्तूबर 1916 में उन्होंने कानून की पढ़ाई हेतु ग्रेज इन में दाखिला लिया। किन्तु उनके सामने एक संकट आ गया। एम० एस० सी० (अर्थशास्त्र) की डिग्री के लिए एक साल तक अध्ययन करने के उपरांत उन्हें भारत लौटना पड़ा। अपना उद्देश्य पूरा किए बिना उन्हें इसलिए लौटाना पड़ा कि बड़ौदा महाराज ने छात्रवृत्ति देनी बंद कर दी थी। डा० आम्बेडकर ने उन्हें मनाने की बहुत कोशिश की लेकिन नतीजा कुछ नही निकला। प्रो० कैनन की सिफारिश से उन्हें अक्तूबर 1917 से अधिकतम चार वर्ष के अन्दर लंदन विश्वविद्यालय में अपना अध्ययन जारी रखने की अनुमति प्राप्त हो गई।

जुलाई 1917 में आम्बेडकर को महाराजा बड़ौदा का सैनिक सचिव बनाया गया ताकि आगे चलकर वे राज्य के वित्त मंत्री बन सकें। इस बात से सभी लोगों के मुंह चढ़ गए। उन्हें किसी भी होटल या होस्टल में रहने की जगह न मिल सकी। वे एक पारसी होटल में बिना अपना भेद बताए रहे। दफ्तर में भी उनके साथ वही हाल हुआ। चपरासी उनकी मेज पर दूर से ही फाइलें फेंका करते थे। दफ्तर में उन्हें पानी भी नसीब नहीं होता था। यह सब असहनीय था। उन्होंने महाराजा को इस सम्बंध में एक नोट लिखा परंतु दीवान ने कहा कि इस बारे में हम कुछ नहीं कह सकते। एक विद्वान अछूत भी सवर्ण हिन्दुओं के पूर्वाग्रहों को कम न कर सका। सवर्ण हिन्दुओं के इस दमघोंटू दुर्व्यवहार के कारण उन्हें बड़ोदा छोड़ना पड़ा। बड़ोदा के एक प्रोफेसर ने उन्हें 'पेइंग गेस्ट' के रूप में रख लेने की हामी भर दी। लेकिन बाद में वह भी मुकर गया। नवम्बर 1917 में वे बड़ोदा से बम्बई आ गए। उस समय उन्होंने एक पुस्तिका लिखी —"स्माल होल्डिंग्स इन इण्डिया एण्ड देयर रिमैडीज।"

नवम्बर में बम्बई में दलित जातियों के दो सम्मेलन हुए। इनमें से एक सम्मेलन में प्रस्ताव पास किया गया कि अछूतों के हितों की रक्षा के लिए दलित जातियों को अपनी जनसंख्या के अनुपात से धारा सभाओं के लिए अपने ही प्रतिनिधि

चुनने का अधिकार दिया जाए। सम्मेलन के एक अन्य प्रस्ताव में कांग्रेस-लीग कार्यक्रम का इस विचार से समर्थन किया कि दलित जातियों पर रिवाजों और धर्म के नाम पर जो प्रतिबंध लगे हुए हैं उन्हें हटाया जाना आवश्यक है। एक अन्य प्रस्ताव में कहा गया कि सवर्ण हिन्दुओं को सत्ता न सौंपी जाए और सरकार से अनुरोध किया गया कि उन्हें अपने प्रतिनिधि स्वयं चुनने का अधिकार प्रदान किया जाए। डा० आम्बेडकर का विचार था कि कांग्रेस-लीग कार्यक्रम लचर है क्योंकि इसके अनुसार कार्यपालिका और विधायिका अलग-अलग शक्तियों के प्रतिनिधि होंगे और उन्ही के प्रति वे उत्तरदायी भी होंगे।[1]

23 - 24 मार्च, 1918 को बम्बई में प्रथम अखिल भारतीय दलित जाति सम्मेलन हुआ जिसकी अध्यक्षता महाराजा बड़ोदा ने की। इसमें अनेक प्रमुख नेताओं ने भाग लिया। इसका उद्देश्य देश के लोगों से यह अपील करना था कि छुआछूत देश के नाम पर एक कलंक है और इसे मिटाया जाए। तिलक ने कहा कि यदि भगवान भी अस्पृश्यता को सहन कर लेता है तो मैं उसकी सत्ता भी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं। परंतु सवर्ण हिन्दुओं ने अछूतोद्धार के लिए जो आंदोलन चलाया था, आम्बेडकर को उसके विषय में बहुत ही संदेह था।

बम्बई में आम्बेडकर ने नया जीवन शुरू करने की कोशिश की। एक पारसी महाशय की सहायता से वे दो छात्रों के लिए शिक्षक नियुक्त कर लिए गए। उन्होंने स्टाक और शेयरों के बारे में सलाह देने के लिए एक व्यापारिक संस्था भी चलाई। पर यह काम भी उन्हें बंद कर देना पड़ा क्योंकि कोई भी ग्राहक एक अछूत से सलाह लेने के लिए तैयार नहीं था। 1918 में उनकी नियुक्ति बम्बई के सीडेनहम कालेज में राजनैतिक अर्थव्यवस्था के प्राध्यापक के पद पर हुई। दूसरे कालेजों के छात्र उनकी कक्षाओं में आया करते थे। लेकिन समाज का बर्ताव जैसे का तैसा रहा। सवर्ण जातियों के प्राध्यापकों ने इस बात का विरोध किया कि प्राध्यापकों को जिन बर्तनों में पानी दिया जाता है उन्हीं से आम्बेडकर को पानी क्यों पिलाया जाता है।[2] उन्होंने 11 नवम्बर, 1918 से 11 मार्च 1920 तक कालेज में काम किया और फिर लंदन में कानून और अर्थशास्त्र की पढ़ाई जारी रखने के लिए प्रस्थान कर दिया। इस संबंध में कोल्हापुर के महाराजा साहू छत्रपति ने भी उनकी सहायता की।

इस दौरान कुछ उल्लेखनीय घटनाएं घटीं। साउथब्रो आयोग ने विभिन्न हितों और वर्गों के प्रतिनिधियों की राय पर विचार किया। इस आयोग की सिफारिशों पर ही मोंटफोर्ड सुधार लागू किए गए थे। आयोग की रिपोर्ट 22 फरवरी 1918 को दी

1 बी० आर० आम्बेडकर—दि इवोलूशन ऑफ प्रोवेंशियल फाइनैंस इन ब्रिटिश इण्डिया

2 कीर, महात्मा जोतीराव, फुले—फादर ऑफ सोशल रिवोलूशन बम्बई 1965

गई थी। मताधिकार के बारे में बयान देने के लिए डा० आम्बेडकर और बी० आर० शिन्दे को बुलाया गया। डा० आम्बेडकर ने मांग की कि दलित जातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात मे स्थान सुरक्षित रखे जाएं और उनकी मतदाता सूचियाँ हों। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि स्वराज्य की मांग से पूर्व सामाजिक समानता सुनिश्चित की जाए। उन्होंने कहा कि स्वराज्य उसी प्रकार एक महार का भी जन्मसिद्ध अधिकार है जैसा एक ब्राह्मण का। उन्होंने हिन्दुओं के बर्ताव में ठोस परिवर्तन की आवश्यकता पर जोर दिया। गैर-ब्राह्मण नेताओं ने पृथक मतदान के अलग दावे किए किन्तु उन्हें रद्द कर दिया गया।

31 जनवरी 1920 को आम्बेडकर ने एक साप्ताहिक आरम्भ किया 'मूक नायक', जिसका उद्देश्य भारत की दलित जातियों का समर्थन करना था। अपने पहले सम्पादकीय में उन्होंने लिखा कि वर्तमान समाचार पत्र कुछ विशिष्ट जातियों के हितों की रक्षा कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि जब तक गैर-ब्राह्मण तथा दलित जातियां ज्ञान और शक्ति सम्पन्न नही होंगी तब तक वे प्रगति नहीं कर सकतीं।[3]

दलित जातियों के सम्मेलन अपने दुख दर्द बखानने में दिन प्रतिदिन मुखर होते रहे। 1918 और 21 मार्च, 1920 को नागपुर और कोल्हापुर में इनके सम्मेलन हुए जिनकी अध्यक्षता साहू महाराज ने की। आम्बेडकर ने इनमें भाग लिया। कोल्हापुर के सम्मेलन में साहू महाराज ने कहा कि डा० आम्बेडकर में अखिल भारतीय नेता बनने की क्षमता है। सम्मेलन के बाद एक अन्तर्जातीय सहभोज हुआ। 1920 के नागपुर सम्मेलन में आम्बेडकर ने बी० आर० शिंदे और उनके डिप्रेस्ड क्लासेज मिशन की आलोचना की जो कि सर नारायण चन्दावरकर के समर्थन से चल रहा था। इस मामले में उन्हें 'सरवेंट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी' से सहानुभूति प्राप्त हुई। सम्मेलन में बी० आर० शिंदे और कुछ अन्य लोगों के प्रति अविश्वास प्रस्ताव पास किया गया। आम्बेडकर अपने अधिकारों के प्रति अडिग थे। उन्होंने कहा कि अगर कोई संस्था गैर-अछूतों की है तो उन्हें अछूतों के हितों के बारे में मांग करने का कोई अधिकार नहीं है। इसी नागपुर सम्मेलन ने आम्बेडकर की भावी योजना को जन्म दिया। उन्होंने अपने साप्ताहिक में एक लेख में कहा कि अगर सत्ता परिर्वतन किया जाता है और वह ब्राह्मणों को सौंपी जाती है तो दलित जातियों द्वारा उसका विरोध करना कोई अनौचित्य नहीं होगा। उन्हें आशंका थी कि अगर अंग्रेजों का संरक्षण समाप्त कर दिया जाता है तो सवर्ण हिन्दू उन्हें कुचल डालेंगे। उन्होंने कहा कि स्वराज्य संविधान में दलितों के मूल अधिकार शामिल किए जाएं।

---

3 खैरमोडे, लाइफ ऑफ आम्बेडकर (मराठी) भाग- 2

मराठी कोशकार डा० एम० वी० केतकर ने उनसे अनुरोध किया कि वे मराठी ज्ञानकोश तैयार करने में अपना योगदान करें तो डाक्टर साहब ने इसे अस्वीकार कर दिया। बम्बई के सिड्नहम कालेज में आयोजित एक आर्थिक गोष्ठी में निबंध पढ़ने के आमंत्रण को भी उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इससे उस बात पर प्रकाश पड़ता है कि सवर्ण हिन्दुओं ने जो पश्चाताप आंदोलन शुरू किया था उसके प्रति आम्बेडकर का क्या रवैया था।

सितम्बर 1920 में आम्बेडकर ने लंदन स्कूल ऑफ इक्नोमिक्स एण्ड पोलिटिकल साइंस में फिर दाखिला ले लिया और बैरिस्टर की उपाधि प्राप्त करने के लिए ग्रेज इन में नाम लिखाया। उन्होंने साहू महाराज की वित्तीय सहायता भी स्वीकार की।

लंदन में उन्होंने नए सिरे से अध्ययन शुरू किया। वे कई पुस्तकालयों के सदस्य बने जैसे लंदन यूनिवर्सिटी जनरल लायब्रेरी, गोल्डस्मिथ लायब्रेरी ऑफ इक्नोमिक लिटरेचर, ब्रिटिश म्यूजियम लायब्रेरी तथा द इण्डिया आफिस लायब्रेरी। इन पुस्तकालयों में वे सारे-सारे दिन बैठ कर पढ़ा करते थे। दिन में भोजन तक के लिए नहीं जाया करते थे। दरअसल भोजन के लिए उनके पास दाम होते ही नहीं थे। वे अपना ध्यान अध्ययन में केन्द्रित रखने के उद्देश्य से इधर-उधर की गतिविधियों से अलग ही रहते थे। सिनेमा उनके लिए कोई आकर्षण नहीं रखता था और न ही रेस्तोरां। उन्होंने अपनी धर्मपत्नी रामाबाई से कहा कि अगर वे अपना हाथ तंग देखें तो अपने गहने बेच डालें। उनके कई प्रशंसकों ने रामाबाई की सहायता के प्रस्ताव किए लेकिन उन्होंने कोई मदद न ली।

जून 1921 में लंदन विश्वविद्यालय ने उनकी थीसिस स्वीकार कर ली। एम० एस० सी० (अर्थशास्त्र) की डिग्री के लिए इस थीसिस की विषयवस्तु थी—'प्रोविंशियल डिसेन्ट्रलाइजेशन ऑफ इम्पीरियल फाइनेंस इन ब्रिटिश इण्डिया'। 1922 - 23 के दौरान उन्होंने जर्मनी के बोन विश्वविद्यालय में कुछ महीनों तक अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। डी० एस० सी० (अर्थशास्त्र) के लिए उन्होंने मार्च 1923 में अपनी थीसिस 'द प्रोबलम ऑफ द रूपी—इट्स ओरिजन एण्ड इट्स सोल्यूशन' प्रस्तुत की। यह थीसिस दिसम्बर 1923 में लंदन की पी० एस० किंग एण्ड कम्पनी ने प्रकाशित की। इस पुस्तक की भूमिका प्रोफेसर कैनन द्वारा लिखी गई। उन्होंने डा० आम्बेडकर की इसके लिए मुक्त-कंठ से प्रशंसा की। उन्होंने उनके विचारों में नवजीवन फूंका। मई 1947 में बम्बई की ठाकर एण्ड कम्पनी ने इस पुस्तक का पुनर्प्रकाशन किया जिसका नाम था 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन करेंसी एण्ड बैंकिंग (खण्ड 1)'। डा० आम्बेडकर अप्रैल 1923 में बार के सदस्य बनाए गए।

लंदन में डा० साहब ने भारत संबंधी मामलों के मंत्री ई० एस० मोंटेग्यू और विट्ठल भाई पटेल से भेंट की और उनसे भारतीय अछूतों की कठिनाइयों के बारे में बातचीत की।

तीन प्रेरणा स्रोत

आम्बेडकर ने तीन महापुरुषों को अपना प्रेरणा स्रोत बताया है। उनमें पहले कबीर, दूसरे महात्मा ज्योतिबा फुले और तीसरे थे भगवान् बुद्ध। कबीर ने उन्हें भक्ति भावना प्रदान की, ज्योतिबा फुले ने उन्हें ब्राह्मण विरोध के लिए प्रेरित किया, सामूहिक पश्चाताप का विचार दिया और शिक्षा तथा आर्थिक उत्थान का संदेश दिया। बुद्ध से उन्हें मानसिक और दार्शनिक पिपासा बुझाने वाला अमृत मिला और अछूतों के उद्धार का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ, जिसका माध्यम था सामूहिक धर्म परिवर्तन।

फुले 19वीं शताब्दी के महाराष्ट्र के एक समाज सुधारक थे। वही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने पुणे में पहली बार अछूतों के लिए प्याऊ लगवाई, 1848 में महिलाओं के लिए और 1851 में अछूतों के लिए स्कूल खोले। कोल्हापुर के साहू महाराज महात्मा फुले को महाराष्ट्र का मार्टिन लूथर कहा करते थे। उन्होंने ब्राह्मणों का विरोध किया लेकिन वे उनसे घृणा नहीं करते थे। न्यायाधीश रानडे जैसे लोगों ने उनके समाज सुधार कार्यों में सहयोग दिया। 1873 में उन्होंने सत्य-शोधक समाज की स्थापना की। इसने तीन सिद्धांतों का प्रचार किया—

(क) सर्वशक्तिमान परमात्मा एक है। सभी प्राणी उसके बच्चों के समान हैं;
(ख) इंसान और भगवान के बीच किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं है; और
(ग) श्रेष्ठता किसी जाति विशेष में जन्म लेने पर आधारित नहीं होनी चाहिए।

बड़ोदा महाराज सयाजीराव गायकवाड़ ने उनकी सहायता की और उनको भारत का 'बुकर टी० वाशिंगटन' बताया। जब तिलक और आगरकर 1881 में जेल से रिहा हुए तो फुले ने उत्साहपूर्वक उनका स्वागत किया और उन्हें जुलूस के रूप में पुणे लाए।

विद्वत्ता

आम्बेडकर पढ़ने-लिखने के दीवाने थे। उन्हें ज्ञानार्जन की बड़ी लालसा थी।

ज्ञान पिपासा शांत करने के लिए वे किताबें खरीदने में अपनी दैनिक जरूरतों की भी बलि चढ़ा देते थे। न्यूयार्क में उन्होंने लगभग 2000 प्राचीन ग्रंथ खरीदे। दूसरे गोलमेज सम्मेलन के दौरान उन्होंने लंदन में ढेर सारी किताबें खरीद डालीं और 32 संदूकों में भरकर भेजने के लिए जहाज पर लाद दिया। उन्होंने बम्बई में एक बंगला बनवाया और उसका नाम 'राजगृह' (महात्मा बुद्ध निवास) रखा। वे पुस्तकालय में ही रहते, वहीं खाते और सोते भी वहीं थे। उनके पुस्तकालय में विभिन्न विषयों जैसे कानून, दर्शन, धर्म, समाजवाद, अर्थशास्त्र, संवैधानिक कानून और संसदीय मामलों की नई से नई किताबें मौजूद रहती थीं। राजनीतिज्ञों की जीवनियों का एक पृथक् विशेष भाग था।

भारत में अनेक विशिष्ट व्यक्तियों के व्यक्तिगत पुस्तकालय थे। श्रीपाद बाबाजी ठाकुर (भारतीय सिविल सर्विस में महाराष्ट्र के प्रथम व्यक्ति), बम्बई के वी० एन० मण्डलीक, डाक्टर भाण्डारकर के ज्येष्ठ पुत्र, न्यायाधीश के० टी० तेलंग, एम० आर० जयकर और पण्डित जवाहर लाल नेहरू इस श्रेणी में गिने जाने कुछ प्रमुख व्यक्तियों में से थे। आम्बेडकर का नाम भी इन व्यक्तियों में जोड़ा जा सकता है।[4] डाक्टर साहब कहा करते थे 'मेरे जैसे व्यक्ति के लिए, जिसका समाज में कोई स्थान नहीं, ये पुस्तकें ही अपने मन तक पहुंचाती हैं।'[6] वह पुस्तकों के प्रति अपने प्यार की तुलना एक प्रेमी के अपनी प्रेमिका के प्रति प्यार से करते थे। पण्डित मदन मोहन मालवीय ने दो लाख रुपए में ये पुस्तकें बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए खरीदनी चाहीं लेकिन उन्होंने इंकार कर दिया।[7] वह व्यक्ति वास्तव में विद्वान था। उन्होंने इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, कानून और संविधान जैसे विषयों में विद्वत्ता प्राप्त की। इन सभी विषयों में उन्होंने तीन विश्व विख्यात ब्रिटिश और अमरीकी विश्वविद्यालयों से सर्वोच्च उपाधियां प्राप्त कीं।

जीवन पर प्रभाव

जब वे अमरीका में थे तो दो बातों से बहुत प्रभावित हुए। एक तो अमरीकी संविधान का चौदहवां संशोधन, जिससे नीग्रो लोगों की दासता समाप्त की गई। भारत में भी अछूतों को कोई स्वतंत्रता नहीं थी। दूसरे वे बूकर टी० वाशिंगटन के

---

4 नवयुग विशेषांक
5 जनता विशेषांक
6 जयंती विशेषांक
7 महानिर्वाण विशेषांक

जीवन से बहुत प्रभावित हुए, जिनका निधन 1915 ई० में हुआ था। वे अमरीका में नीग्रो जाति के लोगों के महान् समाजसुधारक और मार्गदर्शक थे। बुकर टी० वाशिंगटन ने तुस्केगी संस्थान की स्थापना की, जिसने नीग्रो लोगों में शिक्षा-प्रसार किया और नीग्रो लोगों को सदियों की दासता के शिकंजे से मुक्त किया।

ब्रिटेन के संसदीय लोकतंत्र का कई देशों ने अनुकरण किया। जो भारतीय नेता स्वाधीनता संग्राम में जूझ रहे थे उनके सामने भी संसदीय लोकतंत्र का स्वप्न घूम रहा था। आम्बेडकर ने यह अनुभव किया कि भारत की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों पर पश्चिम का प्रभाव असर छोड़ता जा रहा है। वे समझते थे कि पाश्चात्य प्रणालियों के प्रभाव से ही अछूत अपनी जंजीरें तोड़ सकते हैं। वे अपनी मिसाल देकर कहा करते थे कि किसी भी देश में मनुष्य का जीवन निर्माण जन्म से नहीं कर्म से होता है। भारतीय राजनीति में कूदने से पहले उन्होंने लोकतंत्र, समानता और स्वतंत्रता के संबंध में समस्त पाश्चात्य दांवपेच सीख लिए थे। इंग्लैण्ड और अमरीका में अध्ययन के दौरान वे इस निष्कर्ष पर पहुंच चुके थे कि हिन्दू समाज अछूतों का उत्पीड़न कभी नहीं छोड़ सकता। उनका अटल विश्वास था कि मनु की व्यवस्थाएं नहीं वरन् संवैधानिक संरक्षणों के द्वारा ही अछूत एक स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

सामाजिक संघर्ष

आम्बेडकर ने महात्मा फुले के सिद्धांतों को आत्मसात् कर लिया था। वे एक ऐसे समाज के स्वप्नद्रष्टा थे जिसमें समानता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व का साम्राज्य हो। इंग्लैण्ड और अमरीका में ज्ञानार्जन करके व्यापक सामाजिक दृष्टिकोण के साथ उन्होंने वह मार्ग खोज निकाला जिस पर चलने से वह अपने समाज को सवर्ण हिन्दुओं के चंगुल से छुटकारा दिला सकते थे। उन्हें ब्राह्मणवाद से लोहा लेना था और उसके लिए उन्हें सवर्ण हिन्दुओं के विरुद्ध सामाजिक लड़ाई लड़नी थी।

आम्बेडकर विचार और व्यवहार में संतुलन बनाकर चलने वालों में से थे। उनकी गतिशीलता के सिद्धांतों का आधार यही था कि संसार में 'कुछ भी जड़ नहीं है, कुछ भी शाश्वत नहीं और कुछ भी सनातन नहीं। हर चीज परिवर्तनशील है। परिवर्तन मानव और समाज का धर्म है।'[1] उनका कथन था, मानव की पीड़ाओं में सामाजिक परिस्थितियों का बहुत हाथ होता है। उनका आदर्श ऐसे समाज की रचना करना था जो समता, स्वतंत्रता और भ्रातृभाव पर निर्भर हो।' एक आदर्श समाज में अनेक वर्ग विद्यमान रहें और वे एक-दूसरे के हितों को समझें और सहयोग करें। समाज को समस्याएं उलझानी नहीं सुलझानी चाहिए।[2] इसके लिए वे सामाजिक चेतना पर जोर देते थे जिसको वे सभी अधिकारों की, चाहे वे मौलिक हों या सामाजिक,संरक्षक मानत थे।[3] उनका कहना था कि सामाजिक प्रगति तथा सामाजिक स्थायित्व विभिन्न वर्गों के बीच लचीलेपन और बराबरी के अधिकार पर आधारित होता है। वे स्थायित्व के महत्व को मानते थे किंतु परिवर्तन की बलि चढ़ाकर नहीं जबकि परिवर्तन आवश्यक हो। समन्वय जरूर हो परंतु इसके लिए सामाजिक न्याय का गला नहीं घोट दिया जाना चाहिए।[4] सामाजिक स्थायित्व से उनका आशय भारतीय समाज में पनपी जाति प्रथा के निषेध से है।

डा० आम्बेडकर ने जो सामाजिक संघर्ष छेड़े उनका उद्देश्य हिन्दू

---

1 आम्बेडकर अनिहिलेशन ऑफ कास्ट

2 वही, अनुसूची

3 आम्बेडकर, रानडे, गांधी और जिन्ना

4 आम्बेडकर, रानडे, गांधी और जिन्ना

समाज में सवर्ण हिन्दुओं द्वारा अछूतों के साथ किए जाने वाले अन्यायपूर्ण दुर्व्यवहार का मुंह तोड़ना था। आम्बेडकर चाहते थे कि समाज के सभी वर्गों का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक सभी क्षेत्रों में समान स्थान हो तथा उन्हें जीवन में ऊपर उठने के अवसर दिए जाएं और उनकी प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया जाए। प्रत्येक सामाजिक संघर्ष के पीछे यही मौलिक भावनाएं थीं जो कि अछूतों ने आम्बेडकर के नेतृत्व में जातीय सांप्रदायिक अत्याचारों के विरोध में छेड़े थे।

महाड बावड़ी सत्याग्रह

बम्बई विधान परिषद् में गैर-ब्राह्मण दल के नेता एस० के० बोले ने एक प्रस्ताव रखा जो इस प्रकार था :—'यह परिषद् सिफारिश करती है कि सरकारी खर्च से बने या सरकार द्वारा संरक्षित अथवा सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रशासित या कानूनन अधिकारप्राप्त किसी भी सार्वजनिक पनघटों, कुओं या धर्मशालाओं का उपयोग अछूतों को भी करने का अधिकार दिया जाए। इसी तरह सार्वजनिक स्कूलों, अदालतों, कार्यालयों और दवाखानों में भी उनका प्रवेश निर्बाध हो।' बम्बई सरकार ने 11 सितम्बर 1923 को प्रस्ताव को लागू करने के आदेश जारी कर दिए। बोले प्रस्ताव लागू होने के बावजूद बहुत-से स्थानीय बोर्डों और नगरपालिकाओं ने दलित जातियों को नागरिक अधिकार नहीं दिए।

5 अगस्त 1926 को बोले ने एक और प्रस्ताव पेश किया। इसमें कहा गया था कि उन स्वायत्त संस्थाओं को अनुदान देना बंद कर दिया जाए जो तीन साल पहले पास किए गए परिषद् के प्रस्ताव को लागू नहीं कर रही है। बोले प्रस्ताव को लागू करने के लिए महार नगरपालिका ने मीठे पानी के लिए विख्यात बावड़ी पर सभी जातियों को जाने की अनुमति दे दी। इस बात पर सवर्ण हिन्दू बौखला उठे।

19 और 20 मार्च, 1927 को महार में एक अछूत सम्मेलन आयोजित किया गया। इसमें लगभग 10 हजार प्रतिनिधियों ने भाग लिया। अपने अध्यक्षीय भाषण में आम्बेडकर ने कहा कि कुलीनता और हीनता की भावना समाप्त की जाए। अछूतों को चाहिए कि वे स्वावलम्बन, स्वाभिमान और स्वविवेक के बल पर ऊंचे उठें। वे अपना वतन छोड़ दें और सरकारी नौकरियों में भर्ती हों, खेती के लिए जंगलों की खाली जमीन पर मेहनत करें। सम्मेलन में एक प्रस्ताव पास किया गया और सरकार तथा सवर्ण हिन्दुओं से अपील की गई कि बोले प्रस्ताव को क्रियान्वित किया जाए। दो सवर्ण हिन्दुओं ने भी इसका अनुमोदन किया। सम्मेलन के बाद सभी 10,000

प्रतिनिधियों ने चबदार तालाब की ओर कूच किया ताकि पानी पीने और भरने का अपना अधिकार प्राप्त किया जा सके।

एक अफवाह थी कि सभी अछूत वीरेश्वर मंदिर में प्रवेश करेंगे। सवर्ण हिन्दू इससे क्रोधित हो कर पण्डाल में पहुंच गए और प्रतिनिधियों पर टूट पड़े। कई व्यक्तियों की पिटाई हुई। उन्हें मुसलमानों के घरों में शरण लेनी पड़ी। स्वयं आम्बेडकर को बचने के लिए पुलिस थाने की शरण में जाना पड़ा।

नागरिक अधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से शुरू किया गया पहला आंदोलन इस प्रकार समाप्त हो गया। अछूतों का सामाजिक बहिष्कार कर दिया गया, उनसे जमीनें छीन ली गईं और कई गांवों में उन पर हमले किए गए। आम्बेडकर ने अपने लोगों से कहा कि वे आक्रामक कदम उठाएं और सार्वजनिक पनघटों से पानी भरने का अपना अधिकार छीन कर प्राप्त करें तथा जबरदस्ती मंदिरों में प्रवेश करें। उन्होंने सोचा कि अछूतों के अधिकारों के लिए सत्याग्रह आरंभ किया जाए। सत्यशोधक आंदोलन के दो प्रमुख नेताओं जावलकर और जेधे ने इस शर्त पर आंदोलन को हार्दिक समर्थन देने का वचन दिया कि इस आंदोलन से सभी ब्राह्मणों को बाहर निकाल दिया जाए और विशाल आधार पर एक अहिंसक आंदोलन शुरू किया जाए। लेकिन आम्बेडकर ने घोषणा की कि यह समझना गलत है कि सभी ब्राह्मण अछूतों के दुश्मन हैं।[5]

महाड में 25 दिसम्बर, 1927 को सत्याग्रह सम्मेलन बुलाया गया। सम्मेलन के लिए स्थान एक मुसलमान ने दिया। महाड के व्यापारियों ने पूरी तरह असहयोग किया। स्वागत समिति को अनाज और दूसरा सामान बाहर से खरीदना पड़ा। आम्बेडकर 200 प्रतिनिधियों के साथ बम्बई के लिए रवाना हुए। लगभग 3,000 सत्याग्रही तैयार बैठे थे किंतु जिलाधीश ने आम्बेडकर से अनुरोध किया कि वे संघर्ष को स्थगित कर दें।

अपने भाषण में आम्बेडकर ने कहा कि वर्ण-व्यवस्था सभी असमानताओं की जड़ है। उनका कहना था कि समानता का अर्थ है सभी को समान अवसर मिलें और प्रतिभा को ही प्रोत्साहन दिया जाए।[6] उन्होंने इस बात पर बल दिया कि हिन्दू समाज का गठन दो सिद्धांतों पर किया जाए समानता और जातिविहीनता।

अन्य प्रस्तावों के साथ ही एक प्रस्ताव यह भी था कि मनुस्मृति की होली जलाई जाए जिसे आम्बेडकर अछूतों की सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक दासता की जड़ समझते थे। 25 दिसम्बर 1927 को मनुस्मृति जलाई गई। एक प्रमुख गैर-ब्राह्मण

5 कीर

6 महाद पत्रिका

नेता और ब्राह्मणवाद के प्रचण्ड आलोचक भास्कर राव जादव ने टिप्पणी की थी कि पवित्र हिन्दू ग्रंथों में पाप की अपेक्षा सदाशयता अधिक है। एक अन्य प्रस्ताव में मांग की गई कि वर्तमान पुजारीवाद और पुरोहित व्यवसाय को लोकतंत्रीय बनाया जाए जिससे उस प्रत्येक व्यक्ति को यह धंधा अपनाने की छूट हो जिसे इसमें रुचि है। प्रस्तावित सत्याग्रह का प्रस्ताव स्वयं आम्बेडकर ने प्रस्तुत किया था। उन्होंने कहा था मौजूदा हालात में सरकार को क्षुब्ध न किया जाए और उसे अपने विरुद्ध न बनाया जाए।

मंदिर प्रवेश आंदोलन

मई, 1930 में नासिक के कालाराम मंदिर में प्रवेश के लिए आंदोलन शुरू किया गया। आम्बेडकर सोचते थे कि इस तरह का सत्याग्रह अन्य मंदिरों में प्रवेश के लिए सहायक होगा और हिन्दुओं के दिलों में परिवर्तन करेगा। इस शांतिपूर्ण सत्याग्रह का आयोजन आम्बेडकर के नेतृत्व में किया गया। भाऊराव गायकवाड़ सत्याग्रह समिति के सचिव थे। लगभग 15 हजार पुरुष और 500 महिला स्वयंसेवियों नें सत्याग्रह में शामिल होने की तैयारी कर ली। एक मील लम्बा जुलूस चार-चार के समूह में काला राम मंदिर की ओर बढ़ा। क्योंकि मंदिर के पट बंद थे इसलिए जुलूस गोदावरी के घाटों की तरफ मुड़ गया। सवर्ण हिन्दुओं ने उनपर पत्थर और जूते बरसाए। एक महीने में संघर्ष के बाद सवर्ण हिन्दुओं और अछूतों के बीच सुलह हो गई। यह निश्चय किया गया कि राम नवमी के दिन अछूत और सवर्ण जातियों के शक्तिशाली पुरुष रामचन्द्र जी के रथ को खींचकर लाएंगे। लेकिन सवर्ण हिन्दू अपने वायदे से मुकर गए और वे अकेले ही रथ खींच लाए। मंदिर के पट पूरे साल के लिए बंद कर दिए गए। यह आंदोलन अक्तूबर 1935 तक चलता रहा। स्वयंसेवकों की गिरफ्तारी का समाचार लंदन के 'द टाइम्स' समाचार पत्र में छपा और गोल मेज सम्मेलन में डा० आम्बेडकर के लिए यह बड़ा प्रभावकारी सिद्ध हुआ।

डा० आम्बेडकर ने जो आंदोलन चलाए उनमें महाड बावड़ी सत्याग्रह, मनुस्मृति-दहन और कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह में शामिल थे। इन सामाजिक संघर्षों के पीछे उद्देश्यों की भी उन्होंने उद्‌घोषणा की। उन्होंने कहा कि यह सही नहीं है कि हम हर बात सत्याग्रह के रास्ते मनवा लें। यह तो उच्च कहलाने वाले हिन्दूवादियों से एक प्रार्थना है।[7] यह सत्याग्रह हिन्दूओं के हृदय परिवर्तन का प्रयास

---

7 बरात मुक्ति संग्राम

है। उनका विश्वास था कि अछूतों की समस्या केवल पूजा अर्चना से ही नहीं सुलझ सकती।[8] उन्होंने हिन्दुओं के हृदय परिवर्तन पर बल दिया।[9]

दक्षिण के एक नेता डा० सुब्बारामण ने केन्द्रीय असेम्बली में एक विधेयक पेश किया। इसमें कहा गया था कि यदि जनमत संग्रह कराने से यह फैसला हो जाए कि अछूतों को मंदिरों में जाने दिया जाए तो उनको प्रवेश की अनुमति दी जाए, लेकिन विधेयक में देव अर्चना के अधिकार का कहीं जिक्र नहीं किया गया था। आम्बेडकर ने इस विधेयक की स्पष्ट निन्दा की, क्योंकि इसमें अस्पृश्यता को पाप कहकर उसकी प्रताड़ना नहीं की गई थी। गांधी जी की प्रार्थना के बावजूद उन्होंने विधेयक का पूर्ण समर्थन नहीं किया और न ही रंगा अय्यर के मंदिर प्रवेश बिल को स्वीकार किया। वे मंदिर निर्माण से अधिक महत्व छुआछूत निवारण को दिया करते थे।

महार वतन

'वंशानुगत पद अधिनियम' के अनुसार कुछ निश्चित नौकरियों पर काम करने वाले महारों को रात-दिन काम करना पड़ता था और महार नौकर की अनुपस्थिति में उसके पिता या किसी अन्य कुटुम्बी को उसकी जगह सरकारी काम करना होता था। इसके बदले में उन्हें जमीन का एक छोटा-सा टुकड़ा वतन के रूप में दिया जाता था, कुछ अनाज उन्हें ग्रामवासियों से मिलता था और दो आने महीना से लेकर रुपया-धेली तक नाम मात्र का वेतन दिया जाता था। इस वतन प्रणाली का परिणाम यह हुआ कि महारों का स्वाभिमान नष्ट हो गया और वे इस तुच्छ कार्य से जुड़ गए। इस परम्परा से महार जाति पतित बना दी गई। आम्बेडकर का विचार था कि इस कानून में संशोधन से कोई लाभ नहीं होगा। उल्टे वतन प्रणाली का ही उन्मूलन किया जाना चाहिए। उन्होंने अपनी जाति के लोगों को समझाया कि वे जरा से जमीन के टुकड़ों का लालच छोड़कर बेकार पड़ी जमीन को खेती योग्य बनाएं।

19 मार्च, 1928 को आम्बेडकर ने बम्बई विधायिका में विधेयक प्रस्तुत किया कि 1874 के वंशानुगत पद अधिनियम में संशोधन किया जाए। उन्होंने कई सम्मेलनों में विधेयक के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। विधेयक का पहला उद्देश्य यह था कि वतन रखने या न रखने का अधिकार उसके जोतदार की इच्छा पर हो, दूसरी बात यह कि वतनदारों की कुछ श्रेणियों के लिए वेतन भुगतान की अच्छी सुरक्षा हो, और तीसरे यह कि इस प्रकार के नियम बनाए जाएं कि वतनदार को क्या-क्या काम करने होंगे।

8 यथोपरि

9 नवयुग विशेषांक

3 अगस्त 1928 को उन्होंने सदन को बताया कि महारों को जमीन के यह टुकड़े देश के प्राचीन राजा महाराजाओं ने दिए थे। मौजूदा सरकार ने न तो जमीन का कोई क्षेत्र बढ़ाया है और न ही इस तरफ कोई ध्यान दिया कि इन लोगों को जो कुछ वेतन मिलेगा वह नाममात्र ही होगा। उन्होंने प्रस्ताव किया कि वतन की जमीन उनके जोतदारों को पूरे लगान पर दे दी जाए और उन्हें नौकरी से मुक्ति दे दी जाए। उन्होंने कहा कि महारों की जमीन से मिलने वाले लगान और बलूता (वतनदार महारों द्वारा ग्रामीणों से इकट्ठे किए गए) अन्न द्वारा प्राप्त रकम से उनको वेतन दिया जाए। आम्बेडकर ने कहा—अगर सरकार असुविधा या किसी और कारण से इन लोगों को मुक्त करने में हील-हुज्जत करती है तो राजस्व कर्मचारियों और महारों के बीच संघर्ष छिड़ जाएगा। अगर यह बिल पास नहीं होता है तो मैं अपना पूरा जीवन इस काम में लगा दूंगा कि महार एक आम हड़ताल कर दें।[10] अंत में उन्होंने कहा कि महार जाति के विकास में वतन एक सबसे बड़ी बाधा है।

यह बिल 23 सदस्यों की प्रवर समिति को सौंप दिया गया। समिति को जून, 1928 के शुरू में अपनी रिपोर्ट देनी थी। प्रवर समिति ने विधेयक में इतने परिवर्तन कर डाले कि वह बेपहचान ही हो गया। आम्बेडकर ने कहा था कि बलूता को नकद उपहार में बदल दिया जाए। समिति का कहना था कि वतन की जमीन वतनदारों को लगान की पूरी वसूली पर न दी जाकर उससे हुई आमदनी की आधी रकम लेकर दी जानी चाहिए। निहित स्वार्थों के प्रतिनिधियों ने बिल का उद्देश्य ही समाप्त कर दिया। अंत में आम्बेडकर ने 24 जुलाई 1929 को विधेयक वापस ले लिया।

महारों को लगान नहीं देनी पड़ती थी, क्योंकि यह जमीन उन्हें वतन के रूप में दी गई थी। परंतु पेशवा शासन के दौरान रुपए की कमी के कारण उनसे थोड़ी मात्रा में लगान लिया जाता था। वतनदार महारों से वसूल की जाने वाली इस लगान को जुडी कहते थे। जुडी नकद न ली जाकर अनाज के रूप में ली जाती थी। महार नेता शायद यह चाहते थे कि जुडी को पूरे लगान में बदल दिया जाए और सरकार तथा गांव वालों की सेवा के बदले उन्हें नकद वेतन दिया जाए। बम्बई की प्रथम कांग्रेस सरकार (1937–1939) ने फैसला किया कि ऐसी योजना का विरोध किया जाए।

महार नेताओं ने अहमदनगर जिले में हरेगांव में 16 दिसम्बर 1939 को एक सम्मेलन बुलाया और बम्बई के राज्यपाल को एक आवेदन दिया। बम्बई सरकार ने डा० आम्बेडकर से परामर्श किया। महारों की मांगें इस प्रकार थीं : महारों की वेतन की जमीन को रैयतवाड़ी में बदल दिया जाए, उन्हें मासिक वेतन दिया जाए और उन्हें हीन कर्मचारी न समझा जाए तथा केवल सरकारी काम काज ही कराया जाए।

10 बम्बई लेजिस्लेटिव कौंसिल बहस भाग 22

17 सितम्बर 1937 को आम्बेडकर ने बम्बई विधायिका के पूना अधिवेशन में फिर एक विधेयक पेश किया। इसका उद्देश्य महार वतन उन्मूलन था। वे संवैधानिक और कानूनी तौर से वतन प्रथा को समाप्त करना चाहते थे। भाऊराव गायकवाड़ को लिखे गए पत्र में उन्होंने कहा कि मैं नहीं चाहता कि वतन प्रथा के विरुद्ध आंदोलन सत्याग्रह का रूप ले ले। सरकार की ओर से कहा गया था कि युद्ध के दिनों में महारों द्वारा इस प्रकार का संघर्ष अवांछनीय होगा। 1942 में आम्बेडकर जब वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य बनाए गए तो उन्होंने यह सोचा कि मैं संघर्ष के बजाए वाइसराय की कार्यकारिणी समिति में रहकर अपने सम्प्रदाय को अधिक लाभ पहुंचा सकूंगा। इसलिए उन्होंने आंदोलन वापस लेने का वायदा कर लिया। इस पर सरकार ने यह वचन दिया कि जुडी की दर नहीं बढ़ाई जाएगी। वतन प्रथा के विरुद्ध आम्बेडकर ने 16 जून, 1956 को 'द बम्बई स्टेट इन्फीरियर विलेज वतनदार एसोसिएशन' का गठन किया। वे इसके अध्यक्ष बने। एक बयान में उन्होंने कहा कि यदि सरकार सम्मानजनक ढंग से इस समस्या का समाधान नहीं करती है तो सरकार के विरुद्ध मुकदमा दायर किया जाएगा। गांव वालों ने एड़ी-चोटी का जोर लगाकर इसका विरोध किया। डा० आम्बेडकर ने कहा कि सरकार ने सिद्धांत रूप से यह फैसला किया है कि जमीन उसके जोतदार को दी जाए लेकिन वह सरकारी जमीन को इस कानून की सीमा से बाहर रखना चाहती है।[11] उनका कहना था कि वतन कानून और वतन प्रथा संविधान की व्यवस्थाओं के विरुद्ध है। वे कहते थे कि इस संबंध में उच्च न्यायालय में समादेश याचिका दायर की जाए, अगर वहां भी सफलता न मिले तो उच्चतम न्यायालय की शरण ली जाए।[12]

1959 के 'बंबई इन्फीरियर विलेज वतन्स एबोलीशन एक्ट' के अंतर्गत महार वतन प्रथा समाप्त कर दी गई लेकिन दुर्भाग्य है कि जिस व्यक्ति ने 20 साल तक इस प्रथा को समाप्त करने के लिए संघर्ष किया वह इस प्रथा की समाप्ति के समय इस संसार में नहीं रहा।

सामाजिक संघर्षों में मनोभावना

आम्बेडकर ने समय-समय पर कहा कि शास्त्रों को जब्त किया जाना चाहिए क्योंकि इन्होंने पूर्ण मानव का अनादर किया है। उनका निष्कर्ष था कि जब तक स्मृति आधारित धर्म को उखाड़कर नहीं फेंका जाता तब तक इस देश से असमानता

11 आम्बेडकर लेटर्स टू गायकवाड

12 यथोपरि

दूर नहीं की जा सकती। उन्होंने मनुस्मृति दहन को सही बताया। उन्होंने सरकार के इस विवेकहीन फैसले की धज्जियां उड़ा दीं जिसके अनुसार कुछ जातियों को लड़ाकू और कुछ को गैर-लड़ाकू घोषित किया गया था और सरकार से अपील की कि वह महारों में विश्वास रखे और उन्हें दूसरा विश्व-युद्ध समाप्त होने पर सेना से पद-मुक्त न करें। उन्होंने कहा कि मैंने जो कुछ किया है उसके पीछे महारों की ही शक्ति है।[13] सामाजिक सामंजस्य के लिए उन्होंने अन्तर्जातीय भोजों और अन्तर्जातीय विवाहों पर बल दिया।

उन्होंने 8 अगस्त, 1930 को अखिल भारतीय दलित जाति एसोशिएशन के प्रथम अधिवेशन में अध्यक्ष के नाते कहा कि मुझे इस बात की गहरी चिंता है कि कहीं जात-पांत की बेड़ियों में जकड़े मुट्ठीभर हिन्दुओं तक ही असीमित सत्ता सिमट कर न रह जाए। उन्होंने 1935 के संविधान में पद दलित अछूतों के लिए संरक्षण की मांग की और कहा कि दलित जातियों की संख्या के अनुसार परिषदों में उन्हें सीधे प्रतिनिधित्व दिया जाए।

बम्बई सरकार ने डा० पी० पी० सोलंकी के एक प्रस्ताव के अनुसार 'स्टार्टे समिति' बनाई जिसको यह काम सौंपा गया कि वह दलित जातियों और आदिम जातियों के लोगों की शैक्षणिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति का पता लगाए और उनके कल्याण के लिए उपाय सुझाए। ए० बी० ठक्कर, आम्बेडकर और सोलंकी इस समिति में थे। यद्यपि आम्बेडकर समिति के एक सदस्य थे किंतु इसके बावजूद उन्हें दौरे के समय अपमान सहना पड़ा। एक स्थानीय संस्था के प्राथमिक विद्यालय के एक मुख्य अध्यापक ने उन्हें कक्षा में नहीं घुसने दिया। चालिसगांव में तांगे वाले ने उन्हें तांगे में नहीं बैठने दिया। समिति ने मार्च, 1930 में अपनी रिपोर्ट पेश की। इसमें सिफारिश की गई थी कि दलित जातियों के छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों और छात्रावासों की संख्या बढ़ाई जाए, मिलों और रेलवे वर्कशापों में औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जाए, विदेशों में इंजिनियरी सीखने वालों को छात्रवृत्ति प्रदान की जाए, और इन व्यवस्थाओं के प्रबंध के लिए एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया जाए। यह भी सिफारिश की गई कि दलित जातियों के लोगों को पुलिस और सेना में भर्ती किया जाना चाहिए। दलित जातियों के लिए सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए एक प्रभावशाली सामाजिक केन्द्र बनाया जाए।

गांधी जी के अनशन, जिसकी परिणति पूना पैक्ट में हुई, के पश्चात् कांग्रेस के छुआछूत उन्मूलन आंदोलन ने एक व्यापक आधार ग्रहण किया। अछूत और दलित

13 जयंती अंक पृष्ठ-6 (28-10-54 का भाषण)

जातियों का नाम बदल कर 'हरिजन' कर दिया गया। बम्बई विधायिका में एक विधेयक रखा गया जिसमें 'हरिजन' शब्द को कानूनी रूप दे दिया जाए। आम्बेडकर ने कहा हरिजन शब्द वास्तव में अस्पृश्य का समानार्थक बन गया है। यह शब्द हरिजनों के लिए मीठी छुरी के समान था।[14] गांधीजी ने जो हरिजन कोष बनाया था, उसके विषय में आम्बेडकर ने कहा कि यह इन लोगों को दास बनाए रखने की चाल है। उन्होंने गांधी जी से कहा कि अस्पृश्यता विरोधी लीग (जिसकी स्थापना उन्होंने ही की थी) से कहा जाए कि वह अपनी गतिविधियां मंदिर प्रवेश और अन्तर्जातीय भोजों के स्थान पर दलित जातियों के आर्थिक, शैक्षणिक और सामाजिक विकास पर केन्द्रित करे। उन्होंने लीग से अनुरोध किया कि वह नागरिक अधिकारों के लिए अभियान चलाए।

गांधी जी ने 'डिप्रेस्ड क्लासेज लीग' का नाम हरिजन सेवक संघ रख दिया। आम्बेडकर इसके केन्द्रीय बोर्ड के सदस्य थे। लेकिन शीघ्र ही उन्होंने इससे अपना नाता तोड़ लिया क्योंकि बहुत-से दलित जातीय नेता यह समझते थे कि गांधी जी का अस्पृश्यता निवारण कार्य की अपेक्षा प्रचार मंच अधिक है। हरिजन सेवक संघ का दृष्टिकोण मानवीय था। वह गांधी जी के हृदय परिवर्तन सिद्धांत में विश्वास रखता था और आम्बेडकर के संगठनों का उसने हर कदम पर विरोध किया। संघ ने हरिजनों में कांग्रेस की शाखा के रूप में कार्य किया।[15] संघ के प्रबंधक मण्डल से हरिजनों को बाहर रखने के संबंध में गांधी जी का कहना था कि हिन्दुओं ने हरिजनों पर जो अत्याचार किए हैं, संघ उसका प्रायश्चित है। आम्बेडकर का मत था कि संघ अछूतों को कांग्रेस की ओर आकर्षित करने की एक राजनैतिक चाल है। उनकी मान्यता यह थी कि अछूत हिन्दू समाज का कोई अंग नहीं है बल्कि यह तो एक बिल्कुल पृथक् समुदाय है जैसे मुसलमान। उन्होंने अछूतों के लिए पृथक् राजनैतिक अधिकारों की मांग की।

आम्बेडकर ने 'समता सैनिक दल' का गठन किया। इसका उद्देश्य उन मूल्यों को निष्प्रभ करना था जिन्होंने संस्कृति और परम्परा के नाम पर अमानवीय तत्वों को प्रोत्साहन दिया था।[16] उन्होंने कहा कि सामाजिक समानता एक स्थाई समाज का आधार स्तम्भ है। 1948 में गांधी जी की हत्या के बाद दल पर प्रतिबंध लगा दिया गया। आम्बेडकर इस प्रतिबंध के विरुद्ध थे और उन्होंने इसे कायरता बताया। ए० बी० ठक्कर ने समाचार पत्रों में दिए एक बयान में आम्बेडकर पर दोषारोपण किया

14 बम्बई लेजिस्लेटिव असेम्बली बहस भाग 2 (1938)

15 खरात मुक्ति संग्राम

16 आम्बेडकर अनीहिलेशन ऑफ कास्ट

कि हरिजनों के लिए तो वे अत्यधिक रियायतें चाहते हैं पर आदिम जातियों को उनका न्याय-संगत अधिकार दिलाने से भी इंकार करते हैं। आम्बेडकर ने स्पष्ट किया कि उन्होंने दुनिया भर के सताए हुए लोगों का कभी भी मसीहा होने का दावा नहीं किया है और कहा: 'जातियों को तभी इतना स्थान मिल सकता है जबकि मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कम कर दिया जाए।'[17] उन्होंने अपने वर्ग के लोगों की सेवा की भरपूर चेष्टा की।

उन्होंने कहा कि अनुसूचित जातियों का यह फर्ज है कि वे कठिनाइयों से प्राप्त हुई भारत की आजादी की रक्षा करें। उन्होंने अपने अनुयायियों से अनुरोध किया कि वे कांग्रेस तथा दूसरे राजनैतिक दलों से अपने मतभेद भुला दें। उनका विचार था कि भारतीय संविधान के लिए उनकी सेवाओं से हिन्दू समाज में उनके बारे में फैली ये भ्रांतियां दूर हो जाएंगी कि आम्बेडकर ब्रिटिश-समर्थक या राष्ट्र विरोधी थे। एक बार राज्यसभा में अनुसूचित जाति और जनजातीय आयुक्त की रिपोर्ट पर बोलते हुए उन्होंने एक नए द्विराष्ट्र सिद्धांत का प्रतिपादन किया। एक शासक और दूसरा शासित राष्ट्र।[18] यह विचार की वे जाति से अछूत हैं उनके मन मे सदा विद्यमान रहता था। 'हू इज हू' (परिचय ग्रंथ) के लिए अपने जीवन के बारे में विवरण देते समय उन्होंने 'जन्म से अछूत' शब्दों का प्रयोग किया। 1948 में ब्राह्मण जाति की बंबई निवासिनी डा० शारदा कबीर के साथ विवाह के विषय में भी उन्होंने उल्लेख किया।[19] अपने समाज के भविष्य की चिंता उन्हें हर समय सताती थी। अपने जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने कहा 'हाय ! गांवों में रह रहे मेरे जाति बंधुओं का क्या होगा ?' और वे फूट-फूट कर रो पड़े।[20]

आम्बेडकर ने भाऊराव गायकवाड़ से कहा कि वे महार वतन बिल संबंधी संघर्ष को बंद कर दें क्योंकि इससे ऊंची जातियों के लोग क्षुब्ध हो गए हैं। उन्होंने कहा कि आंदोलन से महार जाति के हितों को चोट पहुंचेगी।[21] दूसरे शब्दों में उन्होंने अपने समर्थकों से कहा कि वे सत्याग्रह को हथियार न बनाएं[22] और अनुसूचित जातियों की मांगें सरकार के सामने पेश करें। उन्होंने कहा कि इस बात का ध्यान रखा जाए कि आंदोलन कहीं सामूहिक सत्याग्रह का रूप ग्रहण न कर ले। संविधान सभा में अंतिम भाषण में[23] उन्होंने कहा कि हर समस्या का समाधान संवैधानिक होना चाहिए अन्यथा अराजकता फैल जाएगी।

---

17 टाइम्स ऑफ इण्डिया

18 टाइम्स ऑफ इण्डिया 7-9-1954

19 धियां, नेहरू, दि ईयर्स ऑफ पावर्स

20 महानिर्वाण अंक

21 आम्बेडकर्स लेटर्स टू गायकवाड

22 यथोपरि

23 यथोपरि

पृथक निर्वाचन मण्डलों के लिए संघर्ष

आम्बेडकर देश के गिने-चुने राजनेताओं में से एक थे जिन्होंने 1919 के मोंटफोर्ड सुधारों से लेकर 1946 की कैबिनट मिशन योजना तक संविधान निर्माण संबंधी हर बैठक में भाग लिया। इस अवधि में वह अपने वर्ग के नेता थे।

मार्ले-मिण्टो सुधारों के पहले मुसलमानों ने यह मांग की थी कि अछूतों की गिनती हिंदुओं के साथ न की जाए।[1] 1916 के लखनऊ समझौते में कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने पृथक् मतदान प्रथा को स्वीकार कर लिया था। तिलक ने इस समझौते का समर्थन किया और मालवीय ने विरोध। लार्ड मिंटो और लार्ड मार्ले के साम्प्रदायिक मत-विभाजन की अपरिहार्यता स्वीकार करना लखनऊ समझौते की भारी भूल थी।[2]

मोंटफोर्ड सुधारों के संदर्भ में मताधिकार की समस्याओं पर विचार करने के लिए लार्ड साउथब्रो की अध्यक्षता में एक मताधिकार समिति बनाई गई। इस समिति में श्रीनिवास शास्त्री और सुरेंद्र नाथ बनर्जी को सदस्यों के रूप में और डा० राजेन्द्र प्रसाद, मोतीलाल नेहरू तथा मदन मोहन मालवीय जैसे शीर्षस्थ नेता गवाह के रूप में शामिल थे। आम्बेडकर से भी समिति के सामने विचार प्रकट करने के लिए कहा गया। उन्होंने मांग की कि दलित जातियों की जनसंख्या के आधार पर उनके लिए पृथक् निर्वाचन मण्डल की व्यवस्था और सुरक्षित स्थान रखे जाएं। साथ ही उन्होंने यह भी मांग की कि अछूतों के प्रतिनिधि चुनने का अधिकार केवल उसी वर्ग के लोगों का होना चाहिए। समिति ने अछूतों के लिए अलग निर्वाचन मंडल के सुझाव को अस्वीकार कर दिया। उसने मुसलमानों के लिए साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व स्वीकार कर लिया और अछूतों के प्रतिनिधित्व के लिए नामजदगी की सिफारिश की।[3]

8 नवम्बर, 1927 को सर जौन साइमन की अध्यक्षता में एक संवैधानिक आयोग की नियुक्ति की गई। इस गैर भारतीय आयोग के प्रति भारतीय राष्ट्रवादी भावनाएं भड़क उठीं। कांग्रेस के नेताओं, अन्य समर्थकों, उदारवादियों और

---

1 आम्बेडकर, पाकिस्तान ऑर पार्टिशन ऑफ इण्डिया

2 दत्त आर० पी०, इण्डिया टूडे

3 साउथबरो समिति रिपोर्ट

लाजपतराय के नेतृत्व वाले राष्ट्रवादियों तथा जिन्ना के नेतृत्व में निर्दलियों के एक सम्मेलन में प्रस्ताव पास किया गया कि कमीशन का बहिष्कार किया जाए। मुस्लिम लीग में जिन्ना समर्थकों ने शफी समर्थकों का विरोध किया जो कमीशन को सहयोग दे रहे थे।

केन्द्रीय सरकार ने ब्रिटिश भारत के लिए एक समिति बनाई, और हरेक राज्य की विधायिका ने साइमन कमीशन के साथ काम करने के लिए अपनी प्रान्तीय समिति का गठन किया। आम्बेडकर को 3 अगस्त 1928 को बम्बई प्रदेश समिति का सदस्य चुना गया। बम्बई लॉ कालेज में उनके छात्रों ने कक्षाओं का बहिष्कार किया और उनको ब्रिटिश सरकार का पिट्ठू बताया गया।

आम्बेडकर ने कहा कि वास्तव में हिन्दुओं और अछूतों का आपस में कोई संबंध नहीं है। इसलिए उन्हें एक अलग और बेलाग सम्प्रदाय समझा जाना चाहिए। उनका मत था कि विधायिकाओं में इस वर्ग के एक दो लोगों की नामज़दगी की वर्तमान प्रणाली समाप्त की जानी चाहिए और इसके सदस्यों के लिए स्थान सुरक्षित किए जाने चाहिएं। उन्होंने बंबई लेजिस्लेटिव काउन्सिल में 140 सीटों में से 22 सीटों की मांग की। उन्होंने वयस्क मताधिकार के साथ स्थान सुरक्षित करने की मांग की और कहा कि ऐसा सम्भव न हो तो इनके लिए पृथक् निर्वाचन मण्डल की व्यवस्था हो। साइमन कमीशन के एक सदस्य लार्ड बर्नहम ने उनसे पूछा कि यदि यह दोनों ही व्यवस्थाएं सम्भव न हों तो क्या उनके पास कोई अन्य सुझाव हैं? आम्बेडकर ने उत्तर दिया दोनों में से एक तो हो। हां, वयस्क मताधिकार किसी भी प्रकार की धोखाधड़ी रोकने में समर्थ होगा। आम्बेडकर ने समिति की रिपोर्ट पर असहमति प्रकट की और उस पर हस्ताक्षर नहीं किए। उन्होंने 17 मई, 1929 को अलग रिपोर्ट पेश की। दलित जातियों के 18 संगठनों के विचार पूछे गए थे जिनमें से 16 ने पृथक् निर्वाचन मण्डलों का समर्थन किया था।

नेहरू रिपोर्ट

कांग्रेस द्वारा फरवरी में और बाद में मई 1928 में सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया गया और पण्डित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में भारत के स्वराज्य संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए एक समिति बनाई गई। संविधान निर्माण की दिशा में यह प्रथम प्रयास था। इसका मुख्य उद्देश्य हिन्दू मुस्लिम के बीच की खाई को पाटना था। इसमें विधायिकाओं में दलित जातियों के प्रतिनिधित्व के लिए

4 इण्डियन एनूअल रजिस्टर जुलाई-दिसम्बर 1928 भाग-2

कोई विशेष व्यवस्था नहीं की गई थी। समिति ने विशेष निर्वाचन मण्डलों और सुरक्षित स्थानों को निकम्मा और हानिकर बताया और नामज़दगी का विरोध किया। इसका निष्कर्ष था कि वयस्क मताधिकार से इनका दर्जा ऊपर उठ जायेगा और इनकी राजनैतिक शक्ति में वृद्धि होगी।[5] साइमन कमीशन ने राय जाहिर की कि नेहरू रिपोर्ट कोई सहमत समाधान नहीं है। नेहरू रिपोर्ट में जो निर्वाचन क्षेत्र सुझाए गए थे, आम्बेडकर ने उनका विरोध किया और कहा कि इससे सवर्ण जातियों का प्रभुत्व सुरक्षित रहेगा और ब्राह्मणवादी समाज का शासन कायम रहेगा। उन्होंने कहा कि मुस्लिम बहुल प्रांतों में हिन्दुओं को मुसलमानों की कृपा पर छोड़ देना एक खतरनाक बात होगी। इससे अच्छा तो यह है कि उन्हें अलग मताधिकार की सुविधाएं दी जाएं। उन्होंने मुसलमानों की इस मांग की भी आलोचना की कि इस प्रकार गठित राज्यों को अवशिष्ट अधिकार भी दिए जाएं जिस पर नेहरू रिपोर्ट में सहमति दे दी गई थी।

गोल मेज सम्मेलन

भारत का संविधान बनाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1930 में लंदन में एक गोलमेज सम्मेलन बुलाया। इसका उद्देश्य भारतीयों को संतुष्ट करना था। इस सम्मेलन के 89 सदस्य थे, जिनमें से ब्रिटेन के तीनों राजनैतिक दलों के 16 सदस्य, असहयोग कर रही कांग्रेस को छोड़कर भारत में विभिन्न हितों के पोषक 53 प्रतिनिधि, और भारतीय रजवाड़ों के 20 प्रतिनिधि थे। आम्बेडकर और रायबहादुर श्रीनिवासन दलित जातियों के प्रतिनिधि थे। आम्बेडकर का कहना था कि एक तरह से यह अनुसूचित जातियों की अलग स्थिति को मान्यता प्रदान करना ही था।

आम्बेडकर ने कहा कि अछूतों को अवर्ण हिन्दू, प्रोटेस्टैंट हिन्दू या नान कन्फर्मिस्ट हिन्दू माना जाए। उन्होंने कहा कि अछूतों का हिन्दुओं से अलग अस्तित्व है। ये तो क्रीतदास और गुलाम के बीच के लोग हैं। हिन्दू इन्हें अपना भाई इसलिए बता रहे हैं कि इनके अधिकार खुद हड़प कर जाएं।[6] उन्होंने अछूतों की समस्या को लीग ऑफ नेशन्स के सामने रखने का भी विचार किया।

गोलमेज सम्मेलन का पहला अधिवेशन 12 नवम्बर, 1930 को हुआ। आम्बेडकर ने भारत में ब्रिटिश शासन की कटुनिंदा की। उन्होंने एक सवाल रखा 'क्या यह बताया जा सकता है कि अंग्रेजों ने भारत से छुआछूत मिटाने के लिए क्या

5 दि नेहरू रिपोर्ट

6 आम्बेडकर्स लेटर्स टू गायकवाड

किया ? उन्होंने कहा यद्यपि अंग्रेजों ने डेढ़ सौ साल तक शासन किया है लेकिन इस दौरान उसने दलितों के गले में पड़ा फांसी का फंदा काटने के लिए कुछ भी तो नहीं किया। उन्होंने भारत को प्रभुसत्ता दिए जाने की पुष्टि की। आम्बेडकर ने कहा कि नया संविधान लोकमत के आधार पर तैयार किया जाए। गोलमेज सम्मेलन में 9 उपसमितियां बनाई गईं। आम्बेडकर को अल्पसंख्यक उपसमिति, प्रादेशिक संविधान उपसमिति और सेवा उपसमिति का सदस्य बनाया गया। उन्होंने मांग की कि चुनाव की दृष्टि से दलित जातियों को अलग समुदाय माना जाए और 'वे उस समय तक भारत के किसी भी स्वशासी संविधान पर सहमति प्रकट नहीं कर सकते जब तक की उनकी मांगें सही तौर पर स्वीकार नहीं कर ली जातीं।" उन्होंने समान नागरिकता, नागरिक अधिकारों के मुक्त उपभोग और विधायिकाओं, सरकारी सेवाओं तथा मन्त्रिमण्डल में उनके उचित प्रतिनिधित्व की मांग की।

5 मार्च, 1931 को गांधी-इरविन समझौते के अनुसार कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस ले लिया और गांधी ने वायदा किया कि वे लंदन में आयोजित दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेंगे। गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व गांधीजी, सरोजिनी नायडू और मालवीय ने किया। दूसरा अधिवेशन 7 सितम्बर, 1931 को आरम्भ हुआ। इस सम्मेलन में संघीय स्वरूप समिति और अल्पसंख्यक समिति की रिपोर्ट पर पुनर्विचार किया जाना था और साथ ही इस रिपोर्ट को और व्यापक रूप देने का भी कार्यक्रम था। आम्बेडकर ने कहा कि सभी सम्प्रदाओं को उनकी जनसंख्या के अनुपात से सत्ता में अधिकार दिए जाएं। उन्होंने अल्पसंख्यक समिति को एक पूरक ज्ञापन दिया जिसमें दलित जातियों के लिए विशेष प्रतिनिधित्व की मांग की गई थी। उन्होंने पृथक् मतदान की दलील दी। मुसलमानों, दलित जातियों, ईसाईयों के एक वर्ग, यूरोपियनों और आंग्ल-भारतीयों के प्रमुख प्रतिनिधियों ने एक संयुक्त ज्ञापन प्रस्तुत किया। यह अल्पसंख्यक समझौता कहलाया। इससे गांधीजी झल्ला उठे। अपने भाषण के दौरान उन्होंने कहा कि मैं आम्बेडकर की योग्यता का सम्मान करता हूं पर अपने जीवन में उन्होंने जो मुसीबतें झेली हैं उनकी कडुवाहट में वे न्याय को भुला बैठे हैं। उन्होंने कहा उन्हें इस बात से कोई सरोकार नहीं कि अछूत मुसलमान या ईसाई धर्म अपना लेंगे और इस बात पर जोर दिया कि वे जीवन-भर अछूतों के राजनैतिक अधिकारों के लिए लड़ेंगे। आम्बेडकर ने गांधी जी के इस तर्क का कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने अल्पसंख्यक समिति के सदस्यों द्वारा किए गए उस अनुरोध पत्र पर भी हस्ताक्षर नहीं किए जिसमें साम्प्रदायिक समस्या सुलझाने के अधिकार ब्रिटिश प्रधानमंत्री को सौंप दिए गए थे। गांधी जी ने

7 कूपलैंड, दि कांस्टीटयूशनल प्रोबलम ऑफ इण्डिया

उस पर हस्ताक्षर किए थे। प्रांतीय संविधान उप-समिति में आम्बेडकर ने पूर्ण प्रांतीय स्वायतत्ता की मांग की।

आम्बेडकर ने सुरक्षित स्थानों के साथ संयुक्त निर्वाचन मंडल के प्रावधान पर आधारित राजा-मुन्ने समझौते का विरोध और आलोचना की। अखिल भारतीय दलित जाति कांग्रेस ने भी कैम्पटी में मई 1932 के अपने सम्मेलन में इस समझौते को अस्वीकार कर दिया। दलित कांग्रेस ने आम्बेडकर और अल्पसंख्यकों का समर्थन किया। अब दलित जातियों की परिभाषा का प्रश्न उत्पन्न हुआ। भारतीय विधायिका समिति ने 1916 में भारत सरकार के शिक्षा आयुक्त और साउथब्रो मताधिकार समिति ने दलित जातियों को आदिम जातियों या गिरिजनों, अथवा पहाड़ी जन जातियों, अथवा अपराधी जातियों या अन्य के साथ जोड़ दिया था, लेकिन लोथियन मताधिकार समिति ने फैसला दिया कि इस वर्ग में केवल अछूतों को शामिल किया जाए। यह आम्बेडकर के प्रयासों का परिणाम था।

साम्प्रदायिक पंचाट (कम्यूनल अवार्ड)

17 अगस्त, 1932 को रैमंजे मेंकडोनल्ड ने अल्पसंख्यकों के आरक्षण के लिए एक कार्यक्रम की घोषणा की। इसे आमतौर से कम्यूनल अवार्ड (साम्प्रदायिक पंचाट) के नाम से जाना जाता है। इस योजना के अनुसार राज्यों की कौंसिलों में इन वर्गों के लिए पहले की अपेक्षा लगभग दुगुने स्थान सुरक्षित रखे गए थे। अल्पसंख्यकों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल की व्यवस्था थी। यद्यपि बंगाल और पंजाब में मुसलमानों की संख्या हिन्दुओं से अधिक थी तथापि उन्हें निर्वाचन मंडल का पृथक अधिकार था। उन प्रांतों में मुसलमानों को रियायतें दी गईं थीं जहां वे अल्पसंख्या में थे, पंजाब में सिखों और हिन्दुओं के लिए भी यही व्यवस्था थी। इस समय दलितों को भी अल्पसंख्यक मान लिया गया और उन्हें पृथक निर्वाचन का अधिकार प्राप्त हो गया। अछूतों के लिए बहुत-से विशेष सुरक्षित स्थानों के अतिरिक्त उन्हें सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों से भी चुनाव लड़ने की छूट थी। यह भी प्रावधान था कि 20 साल के बाद विशेष मताधिकार और आरक्षण की व्यवस्था स्वमेव समाप्त हो जाएगी। पहली बार अछूतों का पृथक राजनैतिक अस्तित्व सामने आया और अपनी मातृभूमि के भविष्य का फैसला करने का उन्हें कानूनी अधिकार प्राप्त हुआ। इसे आम्बेडकर की अछूतोद्धार विचारधारा की विजय कहा जा सकता है।[8]

---

8 भारत एस० आर०, मुक्ति संग्राम

कांग्रेस नेताओं ने बम्बई में अपनी कार्यसमिति की बैठक में न तो इस व्यवस्था के पक्ष में और न ही विपक्ष में कोई मत व्यक्त किया।

आम्बेडकर के शब्दों में इस योजना ने अछूतों को दो प्रकार के लाभ दिए:

(1) अछूतों को सुरक्षित स्थानों का कोटा और पृथक मताधिकार प्राप्त हुआ,

(2) उन्हें दुहरे मतदान का अवसर मिला एक सुरक्षित उम्मीदवार चुनने के लिए और दूसरा सामान्य उम्मीदवार के लिए।''[9]

पृथक निर्वाचन के बारे में उन्होंने कहा था: ''हमने पृथक निर्वाचन मंडल की मांग करके हिन्दू समाज का अहित नहीं सोचा है। हमने अलग निर्वाचन मंडल का रास्ता इसलिए चुना ताकि अपने भाग्य निर्धारित करने में हमें सवर्ण हिन्दुओं की कृपा पर निर्भर न रहना पड़े।''[10] उन्होंने गांधी पर लांछन लगाया कि वे हिन्दुओं और दलित जातियों के बीच खाई चौड़ी कर रहे हैं।

गांधीजी ने अछूतों के पृथक राजनैतिक अस्तित्व को मान्यता दिए जाने पर विशेष रूप से असंतोष व्यक्त किया। उनका कहना था कि यह एक अलगाव की पक्की दीवार बन जाएगी। उन्होंने कहा कि ''मै अछूतों के महत्वपूर्ण हितों की बलि नहीं चढ़ने दूंगा चाहे देश को स्वाधीनता मिले या न मिले।''[11] उन्होंने कहा कि पृथक निर्वाचन और पृथक आरक्षण की व्यवस्था मे विलगाव का दुर्भाग्य नही टाला जा सकता। उनका कहना था कि छुआछूत हिन्दू धर्म का अंग नहीं है। मैं तो सोचता हूं कि अगर हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता बनी ही रहती है तो इसमे अच्छा यही है कि इस धर्म का नामोनिशान मिट जाए।[12] वे कहते थे कि आम्बेडकर ने जो रवैया अपनाया है उससे हिन्दू धर्म के टुकड़े हो जाएंगे।

गांधीजी का विचार था कि यदि पृथक निर्वाचन का अधिकार दिया गया तो ग्रामीणों में फूट फैल जाएगी और गांवों में जहां कट्टर हिन्दुओं का बाहुल्य है, वहां इनका जीना दूभर हो जाएगा। इस तरह वे इसे अछूतों के लिए एक निश्चित खतरा मानते थे। उनका विचार था कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का कलंक है और निकट भविष्य में यह मिट जाएगी। लेकिन पृथक निर्वाचन इस घाव को सदा हरा बनाए रखेगा।[13] उधर, आम्बेडकर सोचते थे कि पृथक निर्वाचन, वयस्क मताधिकार और संवैधानिक मूल अधिकारों से उनको पूर्ण सुरक्षा प्राप्त होगी।

---

9 आम्बेडकर, कांग्रेस एण्ड गांधी

10 यथोपरि

11 यथोपरि

12 देसाई महादेव, डायरी

13 बी० आर० नंदा, महात्मा गांधी

गांधीजी ने कहा, "हम नहीं चाहते कि अछूतों को जनगणना तथा अन्य दस्तावेजों में अलग वर्ग के रूप में दर्ज किया जाए। सिखों को अलग दिखाया जा सकता है, मुसलमान अलग गिने जा सकते हैं, यूरोपियनों को भी अलग रखा जा सकता है। उन्होंने कहा, क्या अछूतों को, सदैव अछूत बनाए रखा जा सकता है? उन्होंने अछूतों को हिन्दुओं से अलग रखने के हर प्रयास का विरोध किया। उन्होंने सर संमुअलहोर को 11 मार्च, 1932 को एक पत्र लिखा। इसमें उन्होंने कहा कि पृथक निर्वाचन देश के टुकड़े-टुकड़े कर देगा और इसे पंगु बना डालेगा। साथ ही इससे दलित जातियों का भी कोई कल्याण नहीं होगा। पृथक निर्वाचन से न तो प्रायश्चित ही हो सकेगा और न ही उनकी वह अपमानजनक स्थिति बदलेगी जिसमें वे मदियों से पड़े सड़ रहे हैं। उन्होंने आगे लिखा, मैं महामहिम की सरकार को सूचित करता हूं कि यदि दलित जातियों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल का निर्णय किया जाता है तो मैं आमरण अनशन शुरू कर दूंगा। उन्होंने कहा कि मेरा अनशन तभी समाप्त हो सकेगा जब सरकार स्वयं ही या लोकमत के दबाव में आकर अपने फैसले पर पुर्नविचार करेगी और दलित जातियों के लिए साम्प्रदायिक (अलग) निर्वाचन मंडल बनाने का फैसला वापस ले लेगी। अगर मुझे रिहा कर दिया गया तो भी अनशन जारी रहेगा।

आम्बेडकर ने गांधीजी के आमरण अनशन को एक राजनैतिक पाखंड बताया। एक बयान में उन्होंने कहा कि अगर गांधीजी इस अस्त्र का उपयोग सर्वोच्च लक्ष्य स्वाधीनता प्राप्ति के लिए करते तो इसका औचित्य भी था। गांधीजी का जवाब था: मेरे लिए पृथक निर्वाचन का निवारण चरम लक्ष्य की शुरुआत है और मैं बम्बई में एकत्र सब नेताओं और अन्य लोगों को भी चेतावनी देता हूं कि वे जल्दबाजी में कोई फैसला न करें मैं अपने अनशन को न्याय की तराजू में तोलने के लिए तैयार हूं और अगर सवर्ण हिन्दुओं की आंखें खुल जाती हैं और वे अपने कर्त्तव्य को समझ लेते हैं तो इससे मेरा उद्देश्य पूर्ण हो जाएगा।"

जैसा कि पहले भी बताया गया है, गांधीजी ने यर्वदा जेल में यह अनशन शुरू किया था। बम्बई में हिन्दू नेताओं का एक सम्मेलन आयोजित किया गया। 19 सितम्बर, 1932 को पंडित मदनमोहन मालवीय ने सम्मेलन में कहा कि गतिरोध समाप्त किया जाए और गांधीजी को बचाया जाए। आम्बेडकर को भी यह बताया

---

14 डी० जी० तेन्दुलकर—महात्मा गांधी भाग 3

15 यथोपरि

गया। गांधीजी की जीवन रक्षा के लिए ब्रिटिश प्रधानमंत्री के फैसले को बदलना जरूरी था और इसके लिए जरूरी थी आम्बेडकर की सहमति। देश की आंखें आम्बेडकर पर टिकी थीं। उस समय उनके खिलाफ एक दुर्भावनापूर्ण अभियान छिड़ गया जिसमें आम्बेडकर को दैत्य, गद्दार और भाड़े का टट्टू कहा गया। सम्मेलन की पूर्व संध्या पर उन्होंने एक बयान जारी किया। उन्होंने कहा: ..."महात्मा कोई अमर नहीं है, और न कांग्रेस ही अमर है, ...बहुत से महात्मा आए और चले गए। लेकिन अछूत अछूत ही बने रहे।"[16]

आम्बेडकर अन्य नेताओं के साथ यर्वदा जेल में गांधीजी से मिलने गए। गांधीजी ने सभी स्थानों के लिए पैनल प्रणाली का सुझाव दिया। गांधीजी के सुझाव को आम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया। उन्होंने मांग की कि दलित जातियों के लिए प्रांतीय एसेम्बलियों में 197 स्थान सुरक्षित रखे जाएं। नेताओं ने 126 स्थान सुरक्षित रखना स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा कि बुनियादी चुनाव दस साल के लिए कराए जाएं लेकिन उनके आरक्षण के बारे में अगले 15 वर्षों के बाद दलित जातियों का जनमत संग्रह कराया जाए। प्रांतीय एसेम्बलियों में 148 स्थान सुरक्षित रखने पर फैसला हो गया। यह भी फैसला किया गया कि केन्द्रीय एसेम्बली में ब्रिटिश भारत के हिन्दुओं के लिए निर्धारित कुल स्थानों में से 10 प्रतिशत दलित जातियों के प्रतिनिधियों के लिए होंगे। देवदास गांधी ने आम्बेडकर से व्यक्तिगत अपील की कि वे जनमत संग्रह का प्रश्न उठाकर समझौते को खटाई में पड़ने से बचाएं। गांधीजी ने जिद पकड़ी "या तो यह व्यवस्था 5 साल के लिए ही रहे या फिर मेरे जीवन का मोह छोड़ दो।"[17] लेकिन फिर वे दस साल के लिए तैयार हो गए। फैसले की व्यवस्था में प्रथम निर्वाचन प्रणाली के स्थान पर दो चरणों में चुनाव कराए जाने पर समझौता हो गया। इसके अनुसार दलित जातियों द्वारा पहले चार उम्मीदवारों का चुनाव किया जाएगा; फिर आम चुनाव में सभी मतदाता मिलकर चार में से एक उम्मीदवार को पक्के तौर पर चुनेंगे। इस समझौते पर 24 सितम्बर, 1932 को शाम 5 बजे हस्ताक्षर हुए। इतिहास में यह पूना समझौता के नाम से प्रसिद्ध हो गया। दलित जातियों की ओर से इस पर आम्बेडकर ने हस्ताक्षर किए। पूना समझौते को ब्रिटिश सरकार ने भी स्वीकार कर लिया और मैकडोनल्ड के साम्प्रदायिक समझौते को रद्द कर दिया गया। गांधीजी को संतोष मिल गया। आम्बेडकर की टिप्पणी थी: 'साम्प्रदायिक समझौते के अनुसार दूसरी वोट का जो अधिकार मिला था, वह अमूल्य विशेषाधिकार था ...कोई सवर्ण हिन्दू अपने निर्वाचन क्षेत्र में अछूतों के साथ उपेक्षा

16 कीर, महात्मा जोतीराव फुले—फादर ऑफ सोशल रिवोलूशन बम्बई 1965

17 डी० जी० तेन्दुलकर, यथोपरि

नहीं बरतता, न उनके प्रति विद्वेष भाव रखता अगर उसे उनके मतों को प्राप्त करने की आवश्यकता महसूस होती।"[18]

पूना समझौते से सुरक्षित स्थानों का कोटा बढ़ गया लेकिन इससे दुहरें वोट का अधिकार छिन गया था। राजनैतिक हथियार के रूप में दूसरे वोट की कीमत अमूल्य थी। सवर्ण हिन्दू इसे पसंद नहीं करते थे और अछूतों ने भी इसे नहीं चाहा। इस समझौते को दोनों पक्षों ने मान्यता दे दी और उसे गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935 के नाम से मूर्तरूप दे दिया गया।

आम्बेडकर का कहना था कि आम चुनावों में अनुसूचित जातियों के उम्मीदवारों की हार का कारण पूना पैक्ट की मतदान प्रणाली का दोष था। 23 सितम्बर, 1944 को आम्बेडकर ने शिड्यूल्ड कास्ट्स फैडरेशन की कार्यकारिणी में एक प्रस्ताव पेश किया जिसमें मांग की गई कि दलित जातियों के लिए अलग निर्वाचन मण्डलों की व्यवस्था की जाए।[19] एक भेंट में उन्होंने कहा "पूना समझौता समाप्त होना चाहिए। इसने 6 करोड़ अछूतों को मताधिकार से वंचित कर दिया है। ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार कोई संधि अन्तिम और अलंघ्य नहीं हो सकती।"[20]

आम्बेडकर को यह विश्वास हो गया था कि 1952 सितम्बर के आम चुनावों में उनकी असफलता का कारण सयुक्त मताधिकार था।[21] 22 सितम्बर, 1953 को राज्य सभा में एक भाषण में उन्होंने कहा कि मैंने पूना समझौते पर इसलिए सहमति दे दी थी कि मुझे इससे ज्यादा कुछ और मिलने की उम्मीद नहीं थी। उन्होंने कहा, "पूना समझौते ने दलित जातियों की आत्मनिर्भरता को कुचल कर रख दिया।"[22] कैबिनेट मिशन की कार्यवाहियों से भी आम्बेडकर के हाथ निराशा ही लगी। उन्होंने कहा कि कांग्रेस अछूतों का कोई प्रतिनिधित्व नहीं करती और मांग की कि उनक और गांधीजी के मध्य हुए पूना समझौते को रद्द किया जाए तथा मैकडोनल्ड के साम्प्रदायिक समझौते के अनुसार अछूतों को पृथक निर्वाचन मण्डलों का अधिकार दिया जाए।[23]

उनकी सभी कोशिशें यह थीं कि अछूतों को अल्पसंख्यकों की श्रेणी में रखा

---

18 सप्रू समिति रिपोर्ट

19 दलित बंधु विशेषांक

20 टाइम्स ऑफ इण्डिया, 22-7-1946

21 खरात मुक्ति संग्राम

22 यथोपरि

23 बम्बई क्रोनिकल, 7-11-1946

जाए। आम्बेडकर ने जीतोड़ कोशिशें कीं कि उन्हें अल्पसंख्यकों का दर्जा मिल जाए। संविधान सभा में उन्होंने कहा, "...एक ऐसा समाधान होना चाहिए कि अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक एक दिन आपस में घुलमिल कर एक हो जाएं।" उन्होंने चेतावनी दी, "अल्पसंख्यक एक विस्फोटक तत्व होते हैं और अगर वे किसी दिन फट पड़े तो सरकार की धज्जियां उड़ा सकते हैं।" बहुसंख्यकों की मनोवृत्ति के सम्बंध में उन्होंने कहा, "अल्पसंख्यकों ने बहुसंख्यकों के शासन को स्वीकार किया जो वास्तव में राजनैतिक बहुसंख्यक न होकर साम्प्रदायिक बहुसंख्यक हैं। अब यह बहुसंख्यकों का कर्त्तव्य है कि अल्पसंख्यकों के प्रति सौतेला व्यवहार न करें।" अन्त में उन्होंने कहा, "जब बहुसंख्यक समुदाय सौतेला व्यवहार करना छोड़ देगा तो अल्पसंख्यक नाम की कोई चीज ही नहीं रह जाएगी।"[24]

•

हरिजन आंदोलन

पूना समझौते के बाद अछूतों की समस्या को प्रमुखता मिल गई। अस्पृश्यता निवारण के लिए कांग्रेस का आंदोलन व्यापक रूप लेने लगा। सितम्बर 1932 में गांधीजी ने 'अखिल भारतीय छुआछूत निवारक संघ' की स्थापना की। आम्बेडकर ने सुझाव दिया कि इसकी विभिन्न समितियों में अछूतों का बहुमत होना चाहिए। उनका विचार था कि प्रधानतः संघ की गतिविधियां परिगणित जातियों के आर्थिक, शैक्षणिक और सामाजिक उत्थान तक सीमित रहें। मंदिर प्रवेश समस्या और अन्तर्जातीय भोजों का आयोजन गौण समझा जाए। उन्होंने संघ से अनुरोध किया कि वह नागरिक अधिकारों के लिए अभियान छेड़े।

बाद में इसका नाम बदल कर 'हरिजन सेवक संघ' कर दिया गया। गांधीजी ने 'हरिजन' नाम से एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला। उन्होंने कहा कि नए नाम का आशय यह है कि अछूतों को सम्मान दिया जाए और सवर्ण हिन्दू उन्हें सही स्थान दें और प्रायश्चित करें।

हरिजन सेवक संघ का दृष्टिकोण मानवीय था। इसकी कार्य समिति से हरिजन नेताओं और कार्यकर्ताओं को बाहर रखने के फैसले से धीरे-धीरे उन लोगों के मन में इसकी नेकनीयत के बारे में संदेह पनपने लगा। उनका विचार था कि संघ बिना किसी भिन्न और स्वतन्त्र कार्यप्रणाली के अछूतों के बीच कांग्रेस की शाखा के रूप में काम कर रहा है, और जो आम्बेडकर के हर संगठन का कदम-कदम पर

---

24 सेन्ट्रल असेम्बली बहस भाग 7

विरोध करता है।[25] गांधीजी का कहना था कि संघ के कल्याण कार्यों का उद्देश्य उस पाप का प्रायश्चित है जो सवर्ण हिन्दुओं ने अछूतों के विरुद्ध सदियों से जुल्म ढाकर किया है। आम्बेडकर का कहना था कि अछूत हिन्दू समाज का अंग नहीं हैं बल्कि उनका एक अलग समाज है, ऐसा ही जैसा मुसलमानों का।

गांधीजी द्वारा प्रकाशित 'हरिजन' के पहले अंक को भेजे गए अपने संदेश में आम्बेडकर ने कहा, "मैं कोई संदेश नहीं दे सकता। अंत्यज वर्ण-व्यवस्था की देन है। जब तक वर्ण-व्यवस्था का अस्तित्व रहेगा तब तक अंत्यज रहेंगे और वर्णव्यवस्था के विद्यमान रहते अंत्यजों की मुक्ति सम्भव नहीं।"[26] इस पर गांधीजी ने उत्तर दिया, "अस्पृश्यता वर्ण व्यवस्था की देन नहीं है, बल्कि ऊंच-नीच की भावना है जो हिन्दू धर्म में फैल गई है और इसे खाए जा रही है। अस्पृश्यता निवारण ऊंच-नीच की भावना पर हमला है। मौजूदा संयुक्त संघर्ष का उद्देश्य केवल अस्पृश्यता निवारण तक सीमित है। आम्बेडकर के विचारों से कांग्रेस के उदारवादियों ने सहमति व्यक्त की जिनमें नेहरूजी भी थे। गांधीजी चाहते थे कि हिन्दू समाज से अस्पृश्यता मिट जाए और मौलिक चतुर्वर्ण व्यवस्था कायम रहे। गांधीजी का आशय यह था कि जाति प्रथा कायम रहे पर प्रारम्भिक काल की तरह समाज केवल विशद चार वर्णों में ही विभाजित रहे।[27]

हिन्दुओं से सम्बन्ध विच्छेद

1927 के महाड सत्याग्रह के बाद अछूतों का सामाजिक और धार्मिक संघर्ष एक नई करवट बदल चुका था। दलित जातियों के जितने भी अधिवेशन इसके बाद हुए उनमें हिन्दू धर्म परित्याग करने के सम्बंध में प्रस्ताव पर प्रस्ताव पास किए गए। 29 मई, 1929 को जलगांव सम्मेलन में एक प्रस्ताव पास किया गया जिसमें दलित जातियों का आह्वान किया गया कि वे हिन्दू धर्म को छोड़ कर कोई और धर्म अपना लें। महाराष्ट्र में नासिक जिले में हुए येवला सम्मेलन में 13 अक्तूबर, 1935 को आम्बेडकर ने घोषणा की कि "वे हिन्दू के रूप में नहीं मरेंगे। उन्होंने हिन्दू धर्म से अलग एक ऐसे समाज की कल्पना की जिसमें अछूत स्वतंत्र नागरिक की हैसियत से रह सकें।

उनके हिन्दू धर्म के परित्याग के बारे में तरह-तरह की प्रतिक्रियाएं हुईं।

---

25 खरात मुक्ति संग्राम

26 डी॰ जी॰ तेन्दुलकर, यथोपरि

27 जी॰ एस॰ घुर्ये, कास्ट एण्ड रेस इन इण्डिया

गांधीजी ने कहा, "धर्म कोई ऐसी चीज नहीं जिसे बदला जा सके।"[28] आम्बेडकर के साथियों जैसे सोलंकी और श्रीनिवास ने कहा कि अछूतों को संगठित होकर अधिकारों और सिद्धांतों के लिए लड़ना चाहिए। 12 और 13 जनवरी, 1936 को प्रोफेसर एन० शिवराज की अध्यक्षता में आयोजित महाराष्ट्र अछूत युवा सम्मेलन में आम्बेडकर ने अपने समाज के लोगों को आगाह किया कि धर्म परिवर्तन का यह मतलब नहीं है कि वे रातोंरात नर्क की भट्टी से निकल कर स्वर्ग की फुलवाड़ी में पहुंच जाएंगे बल्कि उन्हें समानता और स्वतंत्रता के लिए सतत संघर्ष करना होगा। कुछ दिन तक आम्बेडकर ने यह सोचा कि वे सिख बन जाएं क्योंकि वे हिन्दू धर्म में बने रहना चाहते थे। उन्होंने कहा कि मुसलमान या ईसाई बनने से अछूतों की राष्ट्रीय भावना मर जाएगी।[29] उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि हिन्दू धर्म में बने रहकर अछूतों का भला नहीं होगा। उनका उद्धार धर्म परिवर्तन के जरिए ही सम्भव है।

---

28 हरिजन 21-3-1936

29 टाइम्स ऑफ इण्डिया 24-7-1936

बम्बई धारा सभा में

'दि डिप्रेस्ड क्लासेस मिशन' के रूप में दलित जातियों को संगठित किया गया। उस समय उनका कार्यक्रम इस प्रकार था: अपनी सामाजिक कठिनाईयों को व्यक्त करना, सवर्ण हिन्दुओं के दुर्व्यवहार के विरुद्ध आवाज उठाना, दलितों को शिक्षा सुविधाएं प्रदान करना, उनकी आर्थिक दशा सुधारना आदि। 1919 के मोंटफोर्ड सुधारों से पूर्व अछूतों की कोई राजनैतिक स्थिति नहीं थी। कुछ खास मसलों पर याचिकाएं दी गईं। किसी प्रकार की राजनैतिक मांग नहीं उठाई गई थीं। आम्बेडकर और श्रीनिवासन ने गोलमेज सम्मेलन में अछूतों का प्रतिनिधित्व किया। इसके पहले दलित जातियों को किसी राजनैतिक सम्मेलन में नहीं बुलाया गया था।

1935 के गवर्नमैंट ऑफ इंडिया एक्ट के अनुसार 1937 में आम चुनाव कराए गए। उस समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही एक ऐसा राजनैतिक दल था जिसका देश भर में प्रभाव था। उदारवादी, मुस्लिम लीग और दूसरे दल भी थे परन्तु अछूतों का कोई राजनैतिक दल नहीं था। ऐसे नाजुक समय में आम्बेडकर ने अगस्त 1936 में इंडिपैडेंट लेबर पार्टी का गठन किया।

इंडिपैडेंट लेबर पार्टी ने पुरानी बम्बई प्रेसीडेंसी मे चुनाव लड़ा क्योंकि केवल इसी क्षेत्र में इस पार्टी ने काम किया था। बम्बई प्रेसीडेंसी में अनुसूचित जातियों के लिए 15 स्थान नियत किए गए थे। इस पार्टी ने उनमें से 13 स्थान जीते। इसके साथ ही पार्टी ने 2 असुरक्षित सीटों पर भी कब्जा कर लिया। आम्बेडकर ने बम्बई से चुनाव लड़ा और कांग्रेस उम्मीदवार प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी पी० बालू (चमार) को पराजित किया। कांग्रेस धारा सभा में इसलिए घुसी थी कि वह 1935 के संविधान को रद्द कराना चाहती थी परन्तु आम्बेडकर इसके पक्ष में थे। इंडिपैडेंट लेबर पार्टी का समर्थन महारों में ही अधिक था, जैसा कि आम्बेडकर ने कहा था, महारों का दलित जातियों में बहुमत है।[1] आम्बेडकर ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि कांग्रेस अछूतों का प्रतिनिधित्व नहीं करती।

शुरू में आम्बेडकर ने सोचा कि केवल दलित जातियों का ही संगठन बनाया जाए। परन्तु बाद में उन्होंने अनुभव किया कि साम्प्रदायिकता के आधार पर पार्टियां बनाने का समय अब नहीं है। उन्होंने अपने मित्रों से सलाह की और इस नतीजे पर

---

1 जनता—8-7-1939

पहुंचे कि दलित जातियों तथा अन्य जातियों के बीच राजनैतिक सहयोग होना बहुत जरूरी है। लेबर (श्रमिक) शब्द के बारे में स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा: 'पार्टी श्रमिकों का संगठन है। क्योंकि इसका कार्यक्रम मुख्यतः श्रमिक वर्ग का कल्याण है... इसलिए दलित के स्थान पर लेबर शब्द को रखा गया है क्योंकि श्रमिक में दलित भी शामिल हैं।'[2]

कांग्रेस का कार्यक्रम 1931 के मूल अधिकारों सम्बंधी कराची कांग्रेस प्रस्ताव पर आधारित था। आम्बेडकर ने उन सिद्धांतों को समाविष्ट कर अपना अलग कार्यक्रम तैयार किया। यह कार्यक्रम अधिक व्यापक तथा प्रगतिशील था। यह समाजवादी गुणों से प्रभावित था और इसका उद्देश्य विशेष रूप से श्रमिक कल्याण था। इससे दोनों भावनाओं की झलक मिलती थी। प्रथम यह कि आम्बेडकर को ब्रिटिश संसदीय लोकतंत्र से लगाव था और दूसरे यह कि पार्टी केवल अनुसूचित जातियों का संगठन न होकर कुछ और भी है। इसने नागरिकों के राज प्रबंध और राज सत्ता के सिद्धांत को स्वीकार किया। यह कार्यक्रम क्रांतिकारी एवं उत्साहजनक था।

1937 में आठ प्रांतों में कांग्रेस की सरकारें बनीं। इंडिपैंडेंट लेबर पार्टी ने बम्बई प्रेसीडेंसी में विपक्षी दल के रूप में कार्य किया। । इसने पट्टेदारी, हड़ताल विरोधी बिल, खोती बिल, और अन्य मुद्दों को लेकर कांग्रेस-नीतियों का डटकर विरोध किया। बम्बई धारा सभा में आम्बेडकर के भाषण बड़े सटीक, विचारोत्तेजक और गूढ़ार्थक होते थे। इंडिपैंडेंट लेबर पार्टी ने तथ्यान्वेषी और मार्ग निर्देशक के रूप में काम किया। कांग्रेस के साथ इसका कोई सहयोग नहीं था। इस पार्टी ने वर्धा शिक्षा योजना का विरोध किया। पार्टी को सवर्ण हिन्दुओं का कोई समर्थन प्राप्त नहीं हुआ।

आम्बेडकर ब्राह्मणवाद से लड़ना चाहते थे, इसलिए उन्होंने श्रमिक आंदोलन के अन्तर्गत अछूत मजदूरों के अलग श्रमिक संघ बनाए । उन्होंने कोई सुगठित राजनैतिक दल बनाने का काम नहीं किया। दलित जातियों में तो केवल भावनात्मक एकता थी।

1938 में बम्बई धारा सभा में देश औद्योगिक विवाद बिल का उद्देश्य औद्योगिक विवादों को शांतिपूर्वक निबटाने के लिए समझौतों और पंच फैसलों की व्यवस्था करना था। आम्बेडकर का कहना था कि हड़ताल करना नौकरी के लिए किए गए समझौते को तोड़ देना है। इसे हम सार्वजनिक गलती या सार्वजनिक अपराध कह सकते हैं।[3] उन्होंने इसे केवल सार्वजनिक भूल कहा, अपराध नहीं। उनके

2 मेनिफेस्टो ऑफ द आइ एल पी

3 बम्बई लेजिस्टलेटिव असेम्बली डिबेट 1938 भाग 4,

शब्दों में हड़ताल स्वतंत्रता के अधिकार का दूसरा नाम है। उन्होंने कहा कि औद्योगिक विवाद विधेयक मजदूरों को गुलाम बना देगा। उन्होंने बिल को 'मजदूरों का नागरिक अधिकार हनन' बताया। उन्होंने कहा कि इससे मजदूर गुलाम हो जाएंगे। विधेयक को प्रतिक्रियावादी, प्रतिगामी और लोकतंत्र का उपहास बताया गया। आम्बेडकर ने बिल को निषिद्ध, जड़मूर्खता और जुल्म की संज्ञा दी।[4] सभी विपक्षी दलों ने बिल का विरोध किया। 7 नवम्बर, 1938 को मजदूरों का समर्थन करने के लिए एक हड़ताल आयोजित की गई। कांग्रेस के समाजवादी नेताओं ने आम्बेडकर का समर्थन नहीं किया क्योंकि वे समझते थे कि आम्बेडकर इस हड़ताल मे अपना राजनैतिक उल्लू सीधा करना चाहते हैं। यह पहली सफल हड़ताल थी, जो श्रमिक नेताओं द्वारा निहित स्वार्थों के विरोध के बावजूद, चुनी हुई सरकार के विरुद्ध की गई। साम्यवादियों ने हड़ताल का समर्थन किया। कांग्रेस नेताओं ने हड़ताल विरोधी जलसे किए। हड़ताल साम्यवादियों के साथ बनाया गया संयुक्त मोर्चा थी। साम्यवादियों की यह कहकर आलोचना की गई कि वे आम्बेडकर और जमनादास मेहता जैसे साम्प्रदायिक नेताओं के साथ मिल गए हैं। भारतीय इतिहास का यह एकमात्र अवसर था जब आम्बेडकर और साम्यवादियों ने एक साथ मिलकर निहित स्वार्थों से टक्कर ली।

1 सितम्बर, 1939 को दूसरा विश्व युद्ध छिड़ने पर ब्रिटिश सरकार ने भारत को युद्ध का भागीदार देश घोषित किया। विभिन्न नेताओं ने इसे अपनी-अपनी दृष्टि से देखा। उदारवादी नेताओं ने कहा कि सरकार को युद्ध में बिना शर्त सहयोग दिया जाए। जिन्ना ने कहा कि ब्रिटिश सरकार को भारतीय मुसलमानों में सुरक्षा और संरक्षण की भावना पैदा करनी चाहिए। 11 सितम्बर को वाइसराय ने घोषणा की कि वर्तमान परिस्थितियों में सरकार के सामने इसके सिवा कोई चारा नहीं है कि संघ को स्थगित कर दिया जाए। इस घोषणा से जिन्ना की बाछें खिल उठीं। आम्बेडकर उन लोगों से सहमत नहीं थे जो अंग्रेजों की मजबूरी का लाभ उठा कर उन्हें भगाना चाहते थे। उन्होंने कहा भारत को नए स्वामी अपने सिर पर नहीं बिठा लेने चाहिए। उन्होंने कहा कि भारत को राष्ट्र मंडल में रहकर बराबरी का दर्जा पाने की चेष्टा करनी चाहिए। उन्होंने ब्रिटिश सरकार को याद दिलाया कि गोलमेज सम्मेलन में यह तय हुआ था कि भारत की सुरक्षा का दायित्व भारत का ही है। 14 सितम्बर को कांग्रेस के नेताओं ने घोषणा कर दी कि स्वतंत्र लोकतांत्रिक भारत स्वतंत्र देशों के साथ सह-सुरक्षा के लिए प्रसन्नता से सहयोग करेगा। उन्होंने ब्रिटिश सरकार से

---

4 बहस 1938 भाग 4,

अनुरोध किया कि वह विशेषतः भारत के संदर्भ में लोकतंत्र और साम्राज्यवाद के बारे में अपने युद्ध उद्देश्यों की घोषणा करे।

सात नेताओं ने एक वक्तव्य जारी किया कि सरकार का यह दावा लोकतंत्र के लिए भंयकर आघात और फासिस्टवादी है कि कांग्रेस सभी पक्षों का प्रतिनिधित्व करती है। वाइसराय ने 50 भारतीय नेताओं से भेंट की जिनमें गांधीजी, जिन्ना, नेहरू, सावरकर, पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, सुभाष बोस, आम्बेडकर आदि प्रमुख थे। आम्बेडकर वाइसराय से 9 अक्तूबर को मिले। उन्होंने शिकायत की कि पूना समझौते पर संतोषजनक तरीके से अमल नहीं हो रहा है। वाइसराय ने एक वक्तव्य दिया कि युद्ध के बाद 'गवर्नमैंट ऑफ इंडिया एक्ट' में भारत की सभी प्रमुख पार्टियों की सलाह के बाद संशोधन किया जाएगा और अल्पसंख्यकों की सहमति के बिना कोई ठोस कदम नहीं उठाया जाएगा। उन्होंने यह भी कहा कि युद्ध के दौरान सभी दलों को लेकर सलाहकार समितियां बनाई जाएंगी। कांग्रेस कार्यसमिति ने वाइसराय के वक्तव्य को पूरी तरह असंतोषजनक बताया। उसने कहा कि ग्रेट ब्रिटेन को किसी प्रकार की भी मदद उसकी साम्राज्यवादी नीतियों का समर्थन होगी। इसलिए राज्यों के मंत्रिमंडलों से त्यागपत्र दे देने के लिए कहा गया। आम्बेडकर और नेहरू के बीच अक्तूबर के तीसरे सप्ताह में विचार विमर्श हुआ। इसके तुरंत बाद आम्बेडकर और अन्य कांग्रेस नेताओं के बीच बम्बई में विचार विमर्श हुआ। इस बातचीत में भाग लेने के लिए वर्धा से महादेव देसाई विशेष रूप से बम्बई आए।

कांग्रेस सरकारों ने सभी प्रांतीय धारा सभाओं में युद्ध प्रस्ताव पेश किए। आम्बेडकर ने बम्बई मंत्रिमंडल पर आक्षेप किया कि उसने यह बात देश की ओर से न कहकर कांग्रेस हाईकमान के आदेश पर रखी है। उन्होंने कहा कि मैं राजनैतिक प्रभुत्व को सहन नहीं कर सकता और कहा कि इससे प्रकट होता है कि बहुसंख्यक किस प्रकार अछूतों की स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृभाव की उपेक्षा करते हैं। उन्होंने कहा कि प्रशासन में अछूत जातियों के सदस्यों की संख्या नगण्य है। उन्होंने कहा कि मैं अछूतों के हितों को देश के हितों से ऊंचा कहने के लिए तैयार हूं।

नवम्बर 1939 में कांग्रेस सरकारों ने कांग्रेस हाईकमान के आदेश पर त्यागपत्र दे दिए। जिन्ना ने मुसलमानों से कहा कि वे 22 दिसम्बर को मुक्ति दिवस के रूप में मनाएं। आम्बेडकर ने भी जिन्ना का साथ दिया और कहा कि यह कांग्रेस विरोधी कदम है और पूर्णतः राजनैतिक कार्रवाई है।[5] आम्बेडकर और उनकी इंडिपेडेंट लेबर पार्टी ने मुक्ति दिवस में भाग लिया। प्रेस को दिए गए एक वक्तव्य में उन्होंने कहा कि कांग्रेस सरकारों के दमन कार्यों की जांच के लिए एक रायल कमीशन नियुक्त किया जाए।

5 टाइम्स आफ इण्डिया 19-12-1939

श्रम सदस्य

आम्बेडकर जुलाई 1942 में वाइसराय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल में श्रम सदस्य के रूप में नियुक्त किए गए। उस समय 'भारत छोड़ो आन्दोलन' चल रहा था। ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अंतिम संग्राम जोरों पर था। उसी समय निर्णायक संवैधानिक गतिविधियां घटीं और ऑल इंडिया शैड्यूल्ड कास्ट्स फैडरेशन का जन्म हुआ।

1942 में क्रिप्स मिशन के भारत आगमन पर आम्बेडकर और एम०.सी० राजा 30 मार्च और प्रथम अप्रैल को सर स्टेफर्ड क्रिप्स से मिले। ब्रिटिश सरकार ने सर स्टेफर्ड को भारत में गतिरोध समाप्त करने के लिए ठोस प्रस्तावों के साथ भेजा था। आम्बेडकर और राजा ने शिकायत की कि क्रिप्स के प्रस्ताव इरादतन ऐसे हैं कि दलित जातियों को अधिकाधिक नुक्सान पहुंचाया जाए और उन्हें निर्विवाद रूप से हिन्दू शासन के जुए के नीचे जोत दिया जाए। उन्होंने सर स्टेफर्ड से कहा कि वे ऐसा आश्वासन दें कि दलित जातियों को नस्ली और मजहबी अल्पसंख्यकों की श्रेणी में रखा जाए जिनके बारे में ब्रिटिश सरकार और संविधान सभा के बीच एक विशेष संधि का प्रावधान था। क्रिप्स ने कहा कि प्रस्तावित संधि का आधार वही होगा जो लीग ऑफ नेशन्स की अल्पसंख्यक संधियों में माना जाता है। आम्बेड़कर और राजा इससे सहमत नहीं थे।[1]

आम्बेड़कर ने बम्बई के गवर्नर से कहा कि मुझे क्रिप्स से मिलकर गहरी निराशा और अवमानना महसूस हुई। क्रिप्स न केवल अगस्त की घोषणा से मुकर गए हैं वरन् ऐसा समझते हैं कि कांग्रेस और लीग को छोड़कर बाकी किसी का कोई महत्व ही नहीं है। लमले (बम्बई के गवर्नर) ने वाइसराय लार्ड लिनलिथगो को लिखा कि पिछले साल एक्जीक्यूटिव कौंसिल में शामिल न किए जाने से आम्बेडकर को बड़ी निराशा हुई है और उनके सामने गम्भीर आर्थिक कठिनाइयां भी पैदा हो गई हैं। उन्होंने उनको फिर कौंसिल में लिए जाने की सिफारिश की।[2]

2 जुलाई, 1942 को वाइसराय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल में आम्बेडकर को

1 नागरकरवी०जेनेसिस आफ पाकिस्तान,

2 यथोपरि

शामिल कर लिया गया। अब इसमें 14 भारतीय और 5 यूरोपीय हो गए। सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर, सर मोहम्मद उस्मान, और सर जे० पी० श्रीवास्तव नए सहयोगी थे। भारत के इतिहास में यह पहला अवसर था कि एक अछूत हिन्दू भारत सरकार की एक्जीक्यूटिव कौंसिल में शामिल किया गया। उन्हें एम० सी० राजा महित अन्य प्रशंसकों से सैकड़ों बधाई संदेश प्राप्त हुए। उनके अनुसार यह ब्राह्मणवाद पर घातक आघात था। उन्होंने 20 जुलाई, 1942 को नागपुर से तार के जरिए श्रम विभाग का कार्यभार संभाल लिया।

उन्होंने वाइसराय कौंसिल में श्रम सदस्य का पद 'अधिकार पूर्ण पदों' को प्राप्त करने के लिए ही स्वीकार किया था। उन्होंने कहा, "यदि ऐसा नहीं होता तो अछूत कभी शासक जाति नहीं बन सकेगी।"[3] उन्होंने कहा कि मेरा यह प्रयत्न होगा कि कभी भी समाज के किसी वर्ग की स्वतंत्रता पर आंच न आने पाए। मालिक-मजदूरों के तमाम संघर्षों में उन्होंने मजदूरों का साथ देने का वचन दिया।[4] उन्होंने कहा कि भारत में मजदूरों की सरकार की स्थापना में श्रमिक वर्ग बहुत कुछ योगदान कर सकता है। सिर्फ यही काफी नहीं है कि भारत को स्वराज्य मिल जाए। देखना यह भी है कि स्वराज्य किन लोगों को सौंपा जाता है।[5]

13 नवम्बर, 1942 को आम्बेडकर ने आकाशवाणी के बम्बई केन्द्र से एक भाषण प्रसारित किया। उन्होंने कहा कि दूसरा विश्व युद्ध दुनिया के क्षेत्र विभाजन के लिए नहीं लड़ा गया। उन्होंने श्रमिकों से अनुरोध किया कि वे नाजियों को पराजित करने के लिए कमर कस लें। उन्होंने कहा कि युद्ध की समाप्ति के लिए लड़ाई जीतना और शांति स्थापित करना आवश्यक है। उन्होंने 'प्रशांत समिति' को एक पत्र लिखकर अमरीकी लोगों से कहा कि वे कांग्रेस हिन्दू प्रचार से गुमराह न हों।

7 मई, 1943 को त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलन द्वारा संस्थापित स्थायी श्रम समिति की बैठक आम्बेडकर की अध्यक्षता में बम्बई सचिवालय में हुई। इस बैठक में उन कारखानों और औद्योगिक संस्थानों में, जो युद्ध के लिए सामान तैयार करने में लगे थे, ब्रिटेन और अमरीका की तरह श्रम-संयुक्त समितियां बनाने पर विचार किया गया। दूसरा प्रश्न रोजगार कार्यालयों की स्थापना करना था।

त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन 6-7 सितम्बर, 1943 को नई दिल्ली में हुआ। अपने अध्यक्षीय भाषण में आम्बेडकर ने इस बात पर बल दिया कि वेतन और आय के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक व्यवस्था तय की जाए और

3 आम्बेडकर्स लेटर्स टू गायकवाड,

4 टाइम्स आफ इण्डिया 27-7-1942

5 आम्बेडकर, दि अनोहिलेशन आफ कास्ट,

श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था की जाए। उन्होंने बताया कि वे दलित जातियों के लिए 8.33 प्रतिशत नौकरियों की व्यवस्था कराने, लंदन में तकनीकी शिक्षा पाने के लिए स्थान सुरक्षित रखवाने और केन्द्रीय एसेम्बली में एक और स्थान प्राप्त करने में सफल हुए हैं। धारा सभाओं में भी उनके लिए एक स्थान और बढ़ा दिया गया।

अप्रैल, 1944 को आम्बेडकर ने एक संशोधन बिल पेश किया कि निरन्तर कार्य करने वाले कारखानों के मजदूरों को सवेतन अवकाश दिए जाने चाहिए। उन्होंने अनिवार्य समझौते और पंच-फैसलों को सही ठहराया क्योंकि इनके जरिए मजदूरों को लाभ होता है। उन्हें आशा थी कि इस सिद्धांत को वे श्रम-संहिता का स्थायी अंग बना देंगे।

सातवां भारतीय श्रम सम्मेलन 27 नवम्बर, 1945 को नई दिल्ली में हुआ। अपने अध्यक्षीय भाषण में आम्बेडकर ने मजदूरों से कहा कि वे पूंजीपतियों से यह सवाल पूछें कि उन्होंने मजदूरों का रहन-सहन ऊंचा उठाने के लिए पैसा क्यों नहीं खर्च किया?

दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में क्षेत्रीय श्रम आयुक्तों के सम्मेलन में दिए गए उद्घाटन भाषण में उन्होंने औद्योगिक शांति स्थापना के लिए कुछ सुझाव सामने रखे। उनके अनुसार एक समझौता-व्यवस्था, श्रम-विवाद-कानून में संशोधन और न्यूनतम वेतन कानून आवश्यक थे। उन्होंने कहा कि औद्योगिक शांति कानून के आधार पर स्थापित हो सकती है; पर यह आवश्यक नहीं कि ताकत के बल पर ही यह सम्भव हो। इसके लिए त्रिपक्षीय मार्ग ही अनुकूल रहेगा। उनका कहना था कि शोषण समाप्त करके, श्रम कल्याण द्वारा और सही औद्योगिक सम्बंधों के जरिए ही औद्योगिक शांति स्थापित हो सकती है।

आम्बेडकर ने मई 1946 में वाइसराय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल से त्यागपत्र दे दिया। वाइसराय ने घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार ने फैसला किया है कि धारा सभाओं में विजयी राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों की सरकार बनाई जाए।

आम्बेडकर के जीवन का एक महत्वपूर्ण अध्याय समाप्त हुआ।

भारत छोड़ो आन्दोलन

7 अगस्त, 1942 को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। 8 अगस्त को कार्यकारिणी का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन शुरू करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। अधिवेशन की समाप्ति गांधीजी के 'करो या मरो' आह्वान के साथ

हुई। अगले दिन सवेरे ही गांधीजी सहित कांग्रेस के सभी नेता गिरफ्तार कर लिए गए। इससे देश स्तब्ध रह गया। लोगों के दिलों में गांधीजी का वही नारा गूंज उठा : "करो या मरो।" हजारों लोगों ने आंदोलन में भाग लिया और बहुतों ने प्राणों की आहुति भी दे दी। वे जानते थे कि यह आखिरी संघर्ष है।

आम्बेड़कर ने गांधीजी के इस खुले विद्रोह को गैर-जिम्मेदाराना और पागलपन बताया तथा कहा कि यह राजनैतिक दीवालियापन है। उनका विचार था कि यदि लोकतांत्रिक देश विश्व युद्ध में जीत जाएंगे तो भारत की स्वतंत्रता को दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकती। कांग्रेसी समाचारपत्रों ने आम्बेडकर पर कटु प्रहार करते हुए कहा कि वाइसराय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल में स्थान मिल जाने का बदला चुकाने के लिए ही आम्बेडकर ब्रिटिश सरकार का गुणगान कर रहें हैं। अगस्त आंदोलन के तुरंत बाद एक्जीक्यूटिव कौंसिल की बैठक हुई, जिसमें यह माना गया कि कांग्रेस का फैसला सरकार के लिए चुनौती है। आम्बेडकरवादी, मिलते-जुलते विचारों वाले मुस्लिम लीगी और हिन्दू महासभाई इस तरह आंदोलन से दूर रहे और अपने सैन्यीकरण में लगे रहे।

गांधीजी ने 10 फरवरी, 1943 को 21 दिन का अनशन कर दिया। वाइसराय की कौंसिल के तीन सदस्यों—एम० एस० अणे, एच० पी० मोदी और एन० आर० सरकार ने त्यागपत्र दे दिये लेकिन आम्बेडकर और जे० पी० श्रीवास्तव ने त्यागपत्र नहीं दिया।

अहमदाबाद नगरपालिका द्वारा आयोजित समारोह में आम्बेडकर ने कहा कि 1942 में सरकार ने जो सख्त कार्यवाही की, वह न्यायसंगत थी, अन्यथा जापानी और जर्मन भारत को रौंद डालते। सरकार द्वारा 'भारत छोड़ो' आंदोलन के दमन से लोगों की भावनाएं और भड़क उठीं और आम्बेडकर के विरुद्ध जो गुब्बार उनके दिलों में थे वे और बढ़ गए। इस प्रकार स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में दलित जातियों और अन्य वर्गों के बीच खाई पड़ गई।

संवैधानिक सुधार

पूना में गांधीजी को आगाखां महल की नजरबंदी से रिहा कर दिया गया। गांधीजी को पत्र लिखकर आम्बेडकर ने उनका ध्यान इस ओर दिलाया कि जिस प्रकार हिन्दू-मुसलमान समझौता हुआ है उसी प्रकार हिन्दू-अछूत समझौता भी होना चाहिए, तभी भारतीय राजनैतिक उद्देश्य पूरे हो सकते हैं। 6 अगस्त, 1944 को गांधीजी ने उत्तर दिया कि मेरे विचार से दलित जातियों का प्रश्न धार्मिक और सामाजिक सुधारों से संबंधित है।

अगस्त 1944 के अंत में कलकत्ता में अनुसूचित जातियों के संगठनों को संबोधित करते हुए आम्बेडकर ने कहा : नए संविधान के अनुसार भारत सार्वभौम सत्ता प्राप्त कर लेगा। उन्होंने कहा कि वाइसराय ने गांधीजी को यह बता कर ठीक ही किया कि सत्ता परिवर्तन के लिए हिन्दू, मुसलमानों और दलित जातियों के बीच त्रिपक्षीय समझौता आवश्यक है। उन्होंने कहा कि जो भी राजनैतिक दल मेरी मांगें स्वीकार करने के लिए तैयार होगा मैं उसी में शामिल होने के लिए तैयार हूं। मद्रास नगर निगम के अभिनन्दन समारोह में आम्बेडकर ने कहा कि इतिहास ऐसी कोई गारंटी नहीं देता है कि जब वयस्क मताधिकार से एक संसदीय सरकार बन गई हो तो उसने लोगों की कठिनाइयां दूर कर ही दी हों। उन्होंने कहा कि मजदूर संगठन बनाने से राजनैतिक सत्ता प्राप्त करना ज्यादा महत्वपूर्ण है।

1944 के उत्तरार्ध में सप्रू समिति भारत में गतिरोध दूर करने में व्यस्त थी। आम्बेडकर ने इसके साथ सहयोग नहीं किया ; क्योंकि इसके कुछ सदस्य ऐसे थे जिन पर उन्हें भरोसा नहीं था। विभिन्न दलों के नेता राजनीतिक संकट को सुलझाने में लगे रहे। आम्बेडकर ने 6 मई, 1945 को बम्बई के परेड मैदान में शैड्यूल्ड कास्ट्स फैडरेशन के वार्षिक समारोह में अपनी योजना प्रस्तुत की। उन्होंने निम्नांकित सिद्धांतों पर आधारित संवैधानिक सुधारों की एक और योजना प्रस्तुत की— (1) बहुमत का शासन सिद्धांत रूप में अविश्वासनीय और व्यवहार रूप में न्यायविहीन हैं; (2) हिन्दू अपनी जनसंख्या के आधार पर स्पष्ट बहुमत का दावा नहीं कर सकते, ज्यादा से ज्यादा वे सापेक्ष बहुमत की बात सोच सकते हैं ; (3) हिन्दुओं का सापेक्ष बहुमत भी इतना नहीं होना चाहिए कि वे किसी छोटे-मोटे अल्पसंख्यक समुदाय के साथ मिलकर सरकार बना लें; (4) साथ ही मुख्य अल्पसंख्यक समुदायों का प्रतिनिधित्व इतना होना चाहिए कि वे मिलकर स्पष्ट बहुमत न बन सके; (5) बहुमत के लाभ को अल्पसंख्यक समुदायों में उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुपात से मिलना चाहिए; और (6) सभी अल्पसंख्यक एक साथ मिलकर धारा सभाओं में भी पूर्ण बहुमत प्राप्त करने की स्थिति में होने चाहिए।[6]

इन सुझावों के आधार पर आम्बेडकर ने सिफारिश की कि केन्द्रीय सभा में हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व 40 प्रतिशत, मुसलमानों का 32 प्रतिशत, अनुसूचित जातियों का 20 प्रतिशत, ईसाइयों का 3 प्रतिशत, सिखों का 4 प्रतिशत और आंग्ल-भारतीयों का 1 प्रतिशत होना चाहिए। दूसरे शब्दों में वे उसी अल्पसंख्यक समझौते पर लौट कर आ रहे थे जो गोलमेज सम्मेलन के दौरान आगा खान के नेतृत्व में हुआ था।

---

6. [illegible]

उनका सुझाव था कि धारा सभाओं में अल्पसंख्यक समुदायों को महत्व दिया जाए। उनकी एक संयुक्त भारत की परिकल्पना थी। उनका विचार था कि इससे मुसलमानों की बेहतर सुरक्षा हो सकेगी। उनके अनुसार आदिमजातियों के लिए किसी प्रतिनिधित्व की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उनमें राजनैतिक समझ-बूझ नहीं है। उन्हें आशा थी कि शैड्यूल्ड कास्ट्स फैडरेशन सत्ता में संतुलन का काम करेगी। उन्होंने संविधान सभा का विरोध किया क्योंकि वे समझते थे कि यह सुझाव बहुत खतरनाक है और इसकी परिणति देश में गृह युद्ध होगी। उनकी योजना में सप्रू समिति की रिपोर्ट को अस्वीकार कर दिया गया था। उनका कहना था कि प्रधानमंत्री तथा अन्य सवर्ण हिन्दू मन्त्रियों का चुनाव अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि करें जबकि अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों का फैसला स्वयं अल्पसंख्यक समुदाय करें। उन्होंने स्वाधीनता के स्थान पर उपनिवेश के दर्जे को सही बताया क्योंकि उनके विचार से उपनिवेश का अर्थ अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार सार्वभौमिकता ही है।

जून 1945 की वेवल योजना के बाद शिमला सम्मेलन हुआ। आम्बेडकर वाइसराय कौंसिल के सदस्य थे इसलिए उसकी कार्यवाही में भाग न ले सके। लेकिन उन्होंने अनुसूचित जातियों का पक्ष तैयार किया। उन्होंने कहा कि जनसंख्या के आधार पर यदि मुसलमानों को एक्जीक्यूटिव कौंसिल में 5 स्थान दिए जा रहे हैं तो अनुसूचित जातियों को कम-से-कम तीन अवश्य दिए जाने चाहिएं। कांग्रेस इस बात पर जोर दे रही थी कि मुसलमान प्रतिनिधि उन्हीं के दल के होने चाहिए। शिमला सम्मेलन अंतरिम सरकार के पदाधिकारियों की समस्या को लेकर भंग हो गया।

लार्ड वेवल ने आम चुनावों की घोषणा कर दी। सभी दलों ने चुनाव प्रचार शुरू कर दिया। आम्बेडकर ने 4 अक्तूबर को पूना से चुनाव प्रचार सभाओं की शुरुआत की। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि अनुसूचित जातियों को कांग्रेस नेतृत्व पर विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि वह पूंजीपतियों और सामाजिक हितों के प्रति उदासीन लोगों की कठपुतली है। कांग्रेस नेतृत्व ने अछूतों की कमजोरियों और कठिनाइयों को दूर करने की कभी कोशिश नहीं की। उन्होंने अपने वर्ग के लोगों से कहा कि वे अपने आप को शासक जाति बनने के लिए विकसित करें। उन्हें आशा थी कि संविधान निर्मात्री समिति धारा सभाओं द्वारा बनाई जाएगी।

10 जनवरी, 1946 को ब्रिटिश संसदीय प्रतिनिधि मंडल ने आम्बेडकर से भेंट की। उन्होंने कहा कि यदि स्वराज्य का अर्थ ऐसी सरकार है जो बहुसंख्यकों द्वारा अल्पसंख्यकों के सहयोग और सहमति से बनी हो तो मैं इसका समर्थन करता हूं।

24 मार्च, 1946 को ब्रिटिश मंत्रिमंडलीय प्रतिनिधि मंडल नई दिल्ली पहुंचा। आम्बेडकर से उनकी भेंट 5 अप्रैल को हुई। उन्होंने केबिनेट मिशन के सामने मांग

पेश की कि अनुसूचित जातियों के लिए पृथक मतदान प्रणाली तय की जाए। इस मांग पत्र में जो अन्य संरक्षण मांगे गए थे, वे इस प्रकार हैं: एक नया समझौता आयोग का गठन, जो इन वर्गों के लिए धारा सभाओं और मंत्री परिषदों में समुचित प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करे, सरकारी नौकरियों और लोक सेवा आयोगों में इन वर्गों के लिए संरक्षित समुचित स्थान। स्मरणपत्र में यह भी मांग की गई कि दलित जातियों में शिक्षा प्रसार के लिए धन निश्चित किया जाना चाहिए। आयोग द्वारा जारी किए गए 'राजकीय पत्र' में अनुसूचित जातियों की मांग का कोई जिक्र नहीं किया गया था।

सितम्बर 1946 में आम्बेडकर इंग्लैंड गए ताकि अंग्रेजों के भारत से चले जाने पर जैसी कि उन्हें निकट भविष्य में उनके भारत छोड़ने की आशा थी, अछूतों के संवैधानिक संरक्षण का पक्ष प्रस्तुत किया जा सके। वे समझते थे कि कैबिनेट मिशन ने इस संबंध में जो हानि की है उसको केवल संवैधानिक संरक्षण द्वारा ही ठीक किया जा सकता है।

आम्बेडकर की मुख्य मांग अछूतों को सवर्ण हिन्दुओं से पृथक मानने की थी। एम० आर० जयकर ने सप्रू को 7 अप्रैल, 1941 को लिखे गए पत्र में कहा था: आम्बेडकर के नेतृत्व में अनुसूचित जातियां पृथकता की दिशा में जागरुक होती जा रही हैं और वे हिन्दुओं के साथ मिलकर रहना नहीं चाहतीं, और शायद शीघ्र ही महारस्तान के लिए मांग उठे।[7]

शिड्यूल्ड कास्ट्स फैडरेशन

जब आम्बेडकर ने श्रम विभाग संभाला था तो दलित जातियों का एक सम्मेलन आम्बेडकर के अभिनंदन के लिए बुलाया गया। उस समय के भाषणों से प्रकट हो गया था कि दलित जातियों के अखिल भारतीय राजनैतिक दल की बहुत आवश्यकता है। पुरानी आई० एल० पी० (इंडियन लेबर पार्टी) को ऑल इंडिया शैड्यूल्ड कास्ट्स फैडरेशन में बदल दिया गया। सम्मेलन की अध्यक्षता एम० शिवराज ने की। आम्बेडकर ने कहा कि अगर सरकार हिन्दुओं को राजनैतिक सत्ता दे देगी तो वे अछूतों का शोषण करते रहेंगे। उन्होंने एक दलीय लोकतंत्र को स्वेच्छाचारी बताया और कहा, स्वेच्छाचार चाहे वह सजातीय लोगों का हो या विजातीय, स्वाधीनता के लिए नास्तिकता होती है।[8] सम्मेलन में अछूत जातियों की

7 सप्रू संकलन, कलकत्ता राष्ट्रीय पुस्तकालय पत्र जे 65

8 आम्बेडकर-रानडे, गांधी एण्ड जिन्ना

ओर से मांग की गई कि सरकारी खर्च पर अलग ग्रामीण बस्तियां बसाई जाएं। मद्रास के 'हिन्दू' समाचारपत्र ने इसकी आलोचना करते हुए लिखा कि इससे छुआछूत पनपती ही रहेगी।

29 जनवरी, 1943 को शिड्यूल्ड कास्ट्स फैडरेशन का वार्षिक अधिवेशन कानपुर में हुआ। इसके अध्यक्ष एम० शिवराज ने कहा कि दलित जातियां सत्ता में परिवर्तन के विरुद्ध नहीं हैं बशर्ते कि जुलाई 1942 में इन जातियों के नागपुर सम्मेलन की मांगो को स्वीकार कर लिया जाए। आम्बेडकर ने अपने भाषण में कहा कि अगर अनुसूचित जातियों को राष्ट्रीय सरकार में उनका पूरा प्रतिनिधित्व नहीं मिलेगा तो वे इसके लिए संघर्ष करेंगे।

शिड्यूल्ड कास्ट्स फैडरेशन के चुनाव घोषणापत्र में निम्नांकित सिद्धांत शामिल किए गए थे: धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक स्वतंत्रता, समान अवसर प्राप्ति का अधिकार, प्रत्येक भारतीय को निर्भय बनाना सरकार की जिम्मेदारी, स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व भाव की रक्षा, उत्पीड़न और शोषण से मुक्ति चाहे यह मानव द्वारा मानव का शोषण हो, चाहे एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का हो या राष्ट्र द्वारा राष्ट्र का; तथा संसदीय लोकतांत्रिक सरकार।

शिड्यूल्ड कास्ट्स फैडरेशन ने चुनाव प्रचार शुरू किया। अहमदाबाद में 29-30 नवम्बर, 1945 को एक प्रांतीय अधिवेशन बुलाया गया। चुनावों के दौरान आम्बेडकर ने हर प्रांत में भाषण दिए। उन्होंने कहा कि कोई भी संविधान हमें उस समय तक मान्य नहीं होगा जब तक कि हम उससे सहमत न हों। उन्होंने कहा कि हम समान अधिकार चाहते हैं, संरक्षण नहीं। उन्होंने कहा कि मैं किसी भी निष्पक्ष अन्तर्राष्ट्रीय अधिकरण के फैसले को मानने के लिए तैयार हूं। सरदार पटेल ने कहा कि आम्बेडकर की कामनाएं तो जायज हैं लेकिन उनका तरीका गलत है। अनुसूचित जाति के लोगों ने सैकड़ों पत्र सरदार पटेल के पास भेजे कि पूना पैक्ट उनके लिए अभिशाप सिद्ध हुआ है।

1946 के आम चुनावों में शैड्यूल्ड कास्ट्स फैडरेशन का पूरा सफाया हो गया।

केबिनेट मंत्री

अंतरिम सरकार

नवम्बर-दिसम्बर 1945 में दिल्ली के लालकिले में आजाद हिंद फौज के बंदियों के खिलाफ मुकदमा और बम्बई में रॉयल इंडिया नेवी में व्यापक हड़ताल से राष्ट्रीय आंदोलन के ज्वार की विकराल लहरों को और बल मिला तथा अंग्रेजों और भारतवासियों के बीच संदेह एवं संघर्ष की मात्रा और तीव्र हो उठी थी। अब यह स्पष्ट हो गया था कि भारत को और ज्यादा दिन गुलाम बनाकर नहीं रखा जा सकता।

24 मार्च, 1946 को केबिनेट मिशन भारत आया। कांग्रेस ने उसके सामने संघ के एक श्रेणी के प्रांतों या इकाईयों के लिए कोई कार्य पालिका या विधायिका बनाए जाने का विरोध किया। उसने केन्द्रीय या प्रांतीय मंत्रिमंडलों में प्रांतों को समान रूप से प्रतिनिधित्व देने का भी विरोध किया। मुस्लिम लीग ने दोनों वर्गों के प्रांतों और केन्द्र में समान प्रतिनिधित्व की मांग पेश की। उसने दो संविधान सभाएं बनाने का प्रस्ताव किया, एक पाकिस्तान के लिए और दूसरी अन्य समुदायों के लिए जिसमें शेष प्रांत सम्मिलित हों।

शिमला सम्मेलन अपने उद्देश्यों को प्राप्त न कर सका और 12 मई, 1946 को विघटित हो गया।

मिशन का उद्देश्य यह बताया गया था कि वह संविधान का कोई प्रारूप पेश नहीं करेगा बल्कि एक संविधान सभा बनाएगा, एक ऐसी व्यवस्था जो भारत के लोगों द्वारा भारत के लोगों के लिए ही देश के संविधान निर्माण की दिशा में अग्रसर हो। मिशन ने भारत में तीन सम्प्रदायों को मान्यता दी—सामान्य, मुसलमान और सिख। लीग ने इसे सिद्धांततः स्वीकार कर लिया पर सार्वभौम पाकिस्तान का निर्माण उनका उद्देश्य रहा। कांग्रेस किसी मामले में अन्य दलों को बराबरी का दर्जा देने के विरुद्ध थी। जबकि जिन्ना समानता की रट लगाते रहे।

वाइसराय ने केबिनेट मिशन की सलाह पर अंतरिम सरकार की योजना पेश की। इसमें 14 सदस्यों का प्रस्ताव था जिनमें से एक अनुसूचित जाति सदस्य शामिल

करके 6 कांग्रेसी, 5 मुस्लिम लीगी, एक सिख, एक पारसी और एक भारतीय ईसाई समुदाय का सदस्य। यह प्रस्ताव सिफारिश न होकर एक फैसला था। पण्डित नेहरू ने कहा कि कांग्रेस ने केवल संविधान सभा में शामिल होने पर सहमति दी है। लीग ने अंतरिम सरकार से बाहर रहने का फैसला किया।

16 अगस्त, 1946 को मुस्लिम लीग ने सीधा संघर्ष दिवस मनाने की घोषणा कर दी। वेवल द्वारा नेहरू को सरकार बनाने का निमंत्रण देने के विरुद्ध यह जिन्ना का जवाब था। पूर्वी और पश्चिमी बंगाल में हिन्दुओं पर हमले किए गए और बिहार तथा उत्तर प्रदेश में हिन्दुओं ने बदले में हिंसा का सहारा लिया।

2 सितम्बर, 1946 को नई सरकार बनी। जिन्ना ने 13 सितम्बर को वाइसराय को सूचित किया कि वह अंतरिम सरकार में शामिल होने को तैयार है। पर जैसे ही मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि सरकार में लिए गए, जिन्ना ने एलान किया कि लीग पाकिस्तान की मांग पर अडिग है और दोनों देशों के लिए अलग-अलग संविधान सभाएं बनाए जाने की इच्छुक है। सरकार में शामिल होने के बाद मुस्लिम लीग ने संयुक्त दायित्व को बलाए ताक रख सरकार के कामों में अड़चनें डालनी शुरू कर दीं। कांग्रेसी सदस्यों ने इस्तीफा देने की धमकी दीं। पंडित नेहरू ने कहा कि अगर ऐसा ही चलता रहा तो बड़े पैमाने पर संघर्ष अवश्यम्भावी है।[1]

आम्बेडकर का प्रस्ताव था कि संविधान सभा को जो कार्य सौंपा गया है उसे दो भागों में बांटा जाए। (1) संवैधानिक और (2) साम्प्रदायिक, संवैधानिक मुद्दे किसी ऐसे आयोग को सौंपा जाए जिसका अध्यक्ष अमरीका या ब्रिटेन का कोई सुप्रसिद्ध विधिशास्त्री हो। दूसरे सदस्य हिन्दू और मुसलमानों में से एक एक लिए जाएं। उसकी कार्यविधि 1935 के गवर्नमैंट आफ इण्डिया एक्ट के अनुसार हो। साम्प्रदायिक प्रश्न विभिन्न सम्प्रदाय के नेताओं की समिति द्वारा हल किए जाएं और अगर वें विफल हो जाएं तो यह मामला ब्रिटिश सरकार को सुलझाना चाहिए। आम्बेडकर ने दावा किया कि अंग्रेज भारत से जाने से पूर्व यह सुनिश्चित करें कि अनुसूचित जातियों को जीने के बुनियादी मानवीय अधिकार स्वतंत्र और सुख अर्जन के साधन दिलाए जाएं और उन्हें पृथक् मतदानाधिकार तथा संरक्षण प्रदान किए जाएं।[2] कांग्रेस के हरिजन नेता जगजीवन राम ने कहा कि वे आम्बेडकर के इस दावे को स्वीकार नहीं करते कि वे ही अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधि हैं। एक बयान में आम्बेडकर ने कहा कि केबिनेट मिशन ने स्थापित नीतियों को तिलांजलि दे दी है। गोलमेज सम्मेलन, साम्प्रदायिक-फैसला, अगस्त प्रस्ताव तथा एमरी एवं वेवेल के

1 मुंशी-दि पिलग्रेमेज आफ फ्रीडम,

2 मेनन वी० पी०,—दि ट्रांसफर आफ पावर,

भाषणों में अछूतों को जो मान्यताएं दी गई थीं उन सब को इस मिशन ने मिटा दिया। उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला कि: (1) यह घोषित किया जाए कि अछूत अल्पसंख्यक हैं, (2) क्या वह ऐसी व्यवस्था करेगी जो यह देखे कि संविधान सभा अछूतों के संरक्षण की जो व्यवस्था करती है वह पूरी है या नहीं, (3) क्या संविधान में यह प्रावधान होगा कि इन वर्गों के लिए जिन संरक्षणों का उल्लेख किया गया है, वह साधारण बहुमत से समाप्त न किया जा सके।[3]

मिशन का तर्क था कि आम्बेडकर का प्रभाव केवल बम्बई प्रेसीडेंसी और मध्यवर्ती प्रांतों के अछूतों तक ही सीमित है। आम्बेडकर का दावा था कि उनकी पार्टी को राष्ट्रीय स्तर पर समर्थन प्राप्त है।

अगस्त 1946 में आम्बेडकर और एन० शिवराज लंदन गए और एटली को बताया कि किस प्रकार केबिनेट मिशन ने उन आश्वासनों पर तुषारपात कर दिया जो सरकार ने अछूतों को दिए थे।

ब्रिटिश संसद ने 15 जुलाई, 1947 को भारतीय स्वाधीनता विधेयक पास कर दिया। 3 अगस्त को मंत्रिमण्डल के सदस्यों की घोषणा कर दी गई। स्वाधीन भारत के प्रथम मंत्रिमण्डल में आम्बेडकर को कानून मंत्री की हैसियत से शामिल किया गया। उनके मित्र और प्रशंसकों ने उन्हें बधाइयां दीं। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में वह प्रथम हिन्दू अछूत मंत्री थे।

15 अगस्त, 1947 को भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र बन गया। स्वतंत्रता संग्राम की महान् विभूतियों दादाभाई नौरोजी, तिलक, गोखले, लाजपत राय, बी० सी० पाल, गांधी, नेहरू और सुभाष बोस आदि के सपने साकार हुए। यूनियन जैक सदा के लिए उतार दिया गया और तिरंगा लहराने लगा। लेकिन साम्प्रदायिक दंगों ने देशभर में स्वतंत्रता की खुशियों पर पानी फेर दिया।

आम्बेडकर ने वक्त को पहचाना और गांधी तथा कांग्रेस विरोधी रवैया त्याग दिया। उन्होंने समय की पुकार को पूरा किया। वे बंगाल के केन्द्रीय सभा के लिए चुने गए थे किन्तु देश विभाजन के साथ ही उनकी सदस्यता समाप्त हो गई। इसके बाद, उनके लिए डा० एम० आर० जयकर ने, जो बम्बई के प्रतिनिधि थे, स्थान खाली किया और बम्बई धारा सभा में कांग्रेस पार्टी ने आम्बेडकर को चुन कर भेजा।

हिन्दू कोडबिल

आम्बेडकर के अनुसार, व्यवहारतः देश में सिविल कोड तो था लेकिन विवाह

3 बम्बई विश्वविद्यालय आम्बेडकर संकलन

तथा उत्तराधिकार के बारे में दीवानी कानून निष्प्रभाव थे। वे यह स्वीकार करते थे कि मुस्लिम वैयक्तिक कानून अपरिवर्तनीय है और देश भर में समान है। उन्होंने कहा कि शरियत कानून पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत में 1935 तक लागू नहीं था। उस क्षेत्र में हिन्दू कानून और उत्तराधिकार नियम लागू थे। 1939 में केन्द्रीय धारा सभा ने पश्चिमोतर सीमाप्रांत में शरियत कानून लागू किया। 1937 में धारा सभा ने हस्तक्षेप करके देश के शेष भाग में शरियत कानून लागू कराया था। उत्तर मालवा में मुसलमान मातृसत्तात्मक कानून का अनुसरण करते थे। आम्बेडकर ने कहा: "... कोई भी मुसलमान यह न कह सकेगा कि सिविल कोड के निर्माताओं ने मुस्लिम सम्प्रदाय की भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया है। यह आशंका दूर कर दी गई है।"[4]

हिन्दू कोड में मौजूदा कानूनों में सिर्फ चार सूत्र जोड़े गए। वे हैं: (1) जन्मजात अधिकार के सिद्धांत का उन्मूलन (2) महिलाओं को सम्पत्ति के सम्पूर्ण अधिकार (3) पिता की सम्पत्ति में पुत्री का अधिकार और (4) तलाक की व्यवस्था। ये व्यवस्थाएं नई अवश्य थीं पर वे किसी भी प्रकार धर्म-विरोधी या समाज विरोधी नहीं थीं।[5] हिन्दू कानून प्रत्येक हिन्दू के लिए एक से नहीं थे। इन परिस्थितियों में उन्हें संहिताबद्ध करना ही एकमात्र समाधान था। बड़े-बड़े विधिवेत्ताओं ने संहितीकरण का समर्थन किया। डा० पी० बी० काने ने भी इसका समर्थन किया था। यह एक आवश्यकता थी। इसका उद्देश्य हिन्दू समाज को एक संगठन सूत्र में बांधना था। आम्बेडकर का विचार था कि वर्तमान कोड का निर्माण भारतीय संविधान को अपनाने का सहज परिणाम है।

हिन्दू कोड भारतीय संविधान के सर्वथा अनुकूल था। अनुच्छेद 15 में कहा गया है, "किसी व्यक्ति के जन्म स्थान के आधार पर सरकार उसके प्रति भेदभाव नहीं बरत सकती।" आम्बेडकर का कहना था कि वर्तमान हिन्दू कानून संविधान में वर्णित मूल अधिकारों के प्रतिकूल है। कोड का उद्देश्य इसे संविधान सम्मत बनाना था।

हिन्दू कोड बिल की पृष्ठभूमि हिन्दू कानून समिति से बनी थी जो 1941 में श्री बी० एन० राव की अध्यक्षता में बनाई गई थी। राव समिति ने हिन्दू कानून का धीरे-धीरे संहितीकरण करने की सिफारिश की थी। केन्द्रीय धारा सभा में 1943 और 1947 में प्रारूप विधेयक भी पेश किया गया परन्तु पुरातन-पंथी हिन्दुओं ने इनका तीव्र विरोध किया था।

आम्बेडकर सोचते थे कि संहितीकरण भारतीय संविधान की शृंखला में एक

4 केन्द्रीय सभा बहस भाग 7,

5 टोपे एण्ड अर्सेकर—हिन्दू कोड, लेखक कोकजे आमुख

कड़ी होगी। इस सम्बंध में बनाई गई प्रवर समिति में आम्बेडकर के अतिरिक्त 16 सदस्य और थे। हिन्दू कानून की कुछ व्यवस्थाओं में संशोधन एवं विधिबद्ध करने के सम्बंध में समिति की रिपोर्ट 12 अगस्त, 1948 को संविधान सभा में प्रस्तुत की गई। रिपोर्ट के भाग इस प्रकार थे—प्रस्तावना, विवाह और तलाक, गोद प्रथा, नाबालकीयत और वारिस, संयुक्त परिवार सम्पत्ति, महिला सम्पत्ति, उत्तराधिकार, भरण पोषण और विविध।

आम्बेडकर ने संशोधन करके अक्तूबर 1948 में संविधान सभा के सामने जो रिपोर्ट पेश की उसका हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों ने विरोध किया। नेहरू ने घोषणा की कि यदि संसद में हिन्दू कोडबिल पास न हुआ तो मैं त्यागपत्र दे दूंगा। सरदार पटेल ने बिल का विरोध किया।

ऐसे वातावरण में आम्बेडकर ने 5 फरवरी, 1951 को हिन्दू कोडबिल पेश किया। उन्होंने कहा कि पूरे भारत में हिन्दू कोड एक-सा होगा। धर्म निरपेक्षता के सम्बंध में उन्होंने कहा कि धर्म निरपेक्षता का अर्थ धर्म-विहीनता नहीं है। उन्होंने जनमत संग्रह का विरोध किया और कहा कि भारतीय संसद सार्वभौम सत्ता है और वह नए कानून बना-बिगाड़ सकती है। बहस तीन दिन चली और बिल पर विचार अगले अधिवेशन तक स्थगित कर दिया गया जो सितम्बर 1951 में होना था। आम्बेडकर 1952 के आम चुनावों से पूर्व संसद से विधेयक पास कराना चाहते थे। नेहरू ने सुझाव दिया कि तलाक और विवाह संबंधी भाग को अलग भाग समझा जाए। बिल की दुर्गति हो गई थी और आम्बेडकर ने कहा, "चार धाराएं पास होने के पश्चात् विधेयक की हत्या कर दी गई और उसे दफना दिया गया, बेरहमी के साथ।"

आम्बेडकर निराश हो गए। नेहरू मंत्रिमण्डल से उनके त्यागपत्र देने का यह भी एक कारण था।

आम्बेडकर का त्यागपत्र

27 सितम्बर, 1951 को आम्बेडकर ने नेहरू मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने संसद में लिखित बयान नहीं दिया बल्कि वाकआउट कर गए। उन्होंने समाचारपत्रों के लिए एक बयान में भी मंत्रिमण्डल के साथ अपने समस्त मतभेदों का ब्यौरा इस प्रकार दिया : (1) नेहरू ने उन्हें सभी मंत्रिमण्डलीय समितियों से बाहर रखा, हालांकि उन्हें योजना विभाग देने का वायदा किया गया था, किन्तु उन्हें कानून मंत्रालय दिया गया। (2) उनके विचार में सरकार अनुसूचित जातियों के कल्याण

में रुचि नहीं लेती थी तथा (3) कश्मीर समस्या पर मतभेद। आम्बेडकर ने कश्मीर के विभाजन का सुझाव दिया था। उनके विचार में हिन्दू और बौद्ध-बहुल भाग भारत में रहें और मुस्लिम-बहुल भाग पाकिस्तान को दे दिया जाए (4) आम्बेडकर समझते थे कि भारत की विदेश नीति गलत है क्योंकि इससे उसके मित्रों के मुकाबिले शत्रुओं की संख्या बढ़ी है। प्रतिरक्षा बजट में वृद्धि भी विदेश नीति के प्रतिकूल है। (5) हिन्दू कोडबिल के बारे में नेहरू की नीति।

नेहरू ने कहा कि वे त्यागपत्र देने वाले एक मंत्री से जैसे बयान की आशा करते थे, यह वैसा नहीं है।

भारत की संविधान सभा में

देश की जनता द्वारा निर्वाचित संविधान सभा बनाए जाने की मांग भारतीय नेताओं की तरफ से बार-बार दोहराई गई। गोलमेज सम्मेलन की विफलता से भारतीय यह समझ गए थे कि भारत का संविधान स्वयं देश के नेताओं द्वारा बनाया जाना चाहिए। 1934 में स्वराज्य पार्टी ने घोषणा की कि एक संविधान बनाने के लिए सभी वर्गों के प्रतिनिधियों को मिला कर संविधान सभा बनाई जाए जो आत्म निर्णय के सिद्धांतों पर आधारित मान्य संविधान तैयार करे।[1] दिसम्बर 1936 में फैजपुर कांग्रेस अधिवेशन में कहा गया था कि भारत में वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना तभी संभव है जबकि संविधान बनाने के लिए वयस्क मताधिकार के आधार पर संविधान सभा का गठन कर दिया जाए। नवम्बर 1939 में कांग्रेस कार्यसमिति ने भी वैसी ही नीति की घोषणा की। गांधी जी ने भी संविधान सभा का समर्थन किया।[2]

मुस्लिम लीग ने मार्च 1940 के अपने लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान की मांग के बाद दोनों देशों के लिए अलग-अलग संविधान सभाओं की मांग की। क्रिप्स प्रस्तावों और सप्रू समिति ने भी इसे ठीक बताया। लेकिन आम्बेडकर ने इसका विरोध किया और आशंका व्यक्त की कि इससे गृहयुद्ध का खतरा है। 5 अप्रैल, 1946 में क्रिप्स मिशन के साथ भेंट वार्ता में आम्बेडकर ने कहा कि मुझे अंदेशा है कि उस संविधान सभा में हिन्दुओं का बहुमत होगा। यदि अछूत इसमें शामिल भी किए जाते हैं तो छोटे-से अल्पसंख्यक के रूप में होंगे जिन्हें कभी परास्त किया जा सकेगा।

यद्यपि आम्बेडकर और उनकी पार्टी ने संविधान सभा को खतरनाक ही समझा था। किन्तु बदली हुई परिस्थितियों में उन्हें इसके सिवा कोई चारा नजर नहीं आया कि इसमें सक्रियता से भाग लिया जाए। आम्बेडकर यह समझ गए थे कि अब अंग्रेजों का भारत से प्रस्थान होना ही है और संविधान सभा ही सार्वभौम सत्ता होगी इसलिए भावी संविधान की बुनियाद भारतीय परिस्थितियों और साथ ही साथ अछूतों के हितों के अनुकूल होनी चाहिए।

आम्बेडकर पश्चिम बंगाल की प्रांतीय धारा सभा से केन्द्रीय धारा सभा के लिए चुन लिए गए हालांकि बम्बई धारा सभा में वे पराजित हो गए थे। वह प्रारूप

1 इण्डिया एनूअल रजिस्टर 1934,

2 हरिजन 28-11-1939

समिति के लिए भी चुन लिए गए और बाद में उसके अध्यक्ष नियुक्त किए गए। इसके अन्य सदस्य थे : एन० गोपाल स्वामी अयंगार,सर अल्लादी, कृष्ण स्वामी अय्यर, के० एम० मुंशी, सर मोहम्मद सादुल्ला, एन० माधव मेनन और डी० पी० खेतान। बी० एन० राव संवैधानिक सलाहकार थे।

आम्बेडकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अपने समाज के प्रति नीतियों के विरोधी एवं अथक आलोचक थे। एसेम्बली के उद्घाटन अधिवेशन में वे कुछेक ऐसे सदस्यों में से थे जिन्होंने नेहरू के उद्देश्य प्रस्तावों का विरोध किया। परंतु जब देश विभाजन के साथ देश की परिस्थितियां बदलने लगीं तो आम्बेडकर को अहसास हुआ कि उन लोगों से बिगाड़ने में कोई लाभ नहीं जिनके हाथ सत्ता आ रही है। कांग्रेस ने भी उस समय उदारता दिखाई और उन्हें प्रारूप समिति का अध्यक्ष बना दिया।

संविधान सभा में शामिल होने का उनका उद्देश्य अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा करना था।[3] उस समय उन्हें आश्चर्य हुआ जब उन्हें प्रारूप समिति के लिए चुन लिया गया और उससे भी ज्यादा तब जब उन्हें इसका अध्यक्ष भी बना दिया गया। उन्होंने महसूस किया कि अब राजनैतिक धारा ने नया मोड़ ले लिया है।[4] अब उन्होंने अपनी नीति बदल डाली। पहले कांग्रेस का कदम-कदम पर विरोध किया करते थे। अब उन्होंने इससे सहयोग करना ठीक समझा।

23 दिसम्बर, 1946 को जयकर द्वारा प्रस्तुत उद्देश्य प्रस्ताव का आम्बेडकर ने समर्थन किया, परन्तु उन्होंने इसे स्थगित रखने का सुझाव दिया ताकि मुस्लिम लीग और रजवाड़ों का सहयोग भी लिया जा सके। उन्होंने कहा कि यह प्रस्ताव सभा के अधिकार क्षेत्र से बाहर है। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि प्रस्ताव गलत, गैर-कानूनी, अपरिपक्व और भयंकर है।[5] लेकिन उन्होंने उद्योगों और जमीन के राष्ट्रीयकरण की मांग की।[6]

उन्होंने कहा कि संविधान सभा भारतीय जनता की प्रतिनिधि है। उन्होंने कहा कि भारतीय प्रभुसत्ता ब्रिटिश संसद की प्रभुसत्ता की अनुचरी नहीं है। संविधान की प्रस्तावना में यह स्पष्ट है कि उसे शक्ति कहां से मिली है और किन उद्देश्यों की उसे पूर्ति करनी है। उन्होंने संघीय शासन का समर्थन किया। उनका दृष्टिकोण यह था कि सामान्य परिस्थितियों में तो भारत संघीय लोकतंत्र है किन्तु आपातस्थिति में इसका रूप एकात्मक सरकार के रूप में बदल सकता है। उन्होंने दृढ़ केंद्रीय सरकार की वकालत की। सभी अधिकारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिकार यह है कि हर नागरिक को समान अवसर प्रदान किए गए हैं। संविधान संशोधन के अनुच्छेद को

3 केन्द्रीय सभा बहस भाग- 11 4 आम्बेडकरर्स लेटर्स टू गायकवाड

5 मुंशी के० एम० ऊपरलिखित 6 के० स० बहस भाग- 1

उन्होंने इसकी आत्मा और हृदय बताया। नीति निर्देशक सिद्धांत राजनीतिक प्रजातंत्र के साथ सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के स्तम्भ हैं जिन्हें लिखित संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों के जरिए प्राप्त किया गया है। आम्बेडकर के विचार में संविधान द्वारा इस देश की विभिन्न सरकारों को ये एक प्रकार से सौंपे गए दायित्व ही हैं। शुरू में वे गांवों को अंधविश्वासों की जड़ बताया करते थे लेकिन बाद में उन्होंने नीति निर्देशक सिद्धातों में ग्राम पंचायतों की सत्ता स्वीकार की। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांत ही उसकी जान है। मूल अधिकारों को उनका अनुगामी होना चाहिए। उन्होंने इंग्लैंड की तरह मंत्रिपरिषदीय शासन व्यवस्था को ठीक समझा। अमेरिका की राष्ट्रपति प्रधान शासन व्यवस्था की अपेक्षा इसे अधिक अच्छा समझा गया।

हमारे संविधान में संसार के आधुनिक संविधानों के नवीनतम गुण समाए हुए हैं, जिनमें राष्ट्रीयता, केन्द्रीकरण, सुदृढ़ कार्यपालिका, धर्म निरपेक्षता और कल्याणकारी सरकार के तत्व समाविष्ट हैं। इसमें न केवल शासन तंत्र की व्यवस्था है अपितु सुनियोजित सामाजिक परिवर्तनों की भी पूरी गुंजायश है। इसका उद्देश्य राजनैतिक लोकतंत्र में आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र को समाविष्ट करना है। आम्बेडकर का कहना है कि कार्यपालिका को विधायिका के साथ मिलकर चलना चाहिए। आम्बेडकर ने कहा कि हमारे संविधान के सिद्धांत यदि सर्वोत्कृष्ट नहीं हैं तो यह दुनिया के किसी भी संविधान से घटकर भी नहीं। उनका विचार था, कोई संविधान अपने में कैसा ही हो, उसकी अच्छाई-बुराई इस पर निर्भर करती है कि उसके चलाने वाले लोग कैसे हैं। राज्य सभा में उन्होंने अपने भाषण में कहा था "हमने संविधान के रूप में एक आश्चर्यजनक देव मंदिर बनाया, लेकिन देवताओं की प्रतिष्ठा से पूर्व ही इसे दानवों ने हथिया लिया"।

श्रम और संविधान

केन्द्र सरकार को न केवल कानून बनाने का अधिकार दिया गया है बल्कि उन्हें लागू कराने की शक्तियां भी उसके हाथ में हैं।

संविधान सरकार की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दिशा के निर्देशन का स्रोत है। वह समाज के लिए एक आर्थिक व्यवस्था का भी निर्धारण करता है। यानी संविधान यह निर्धारित करता है कि उत्पादन साधनों के स्वामित्व तथा प्रबंध का क्या स्वरूप हो और समाज में आय का वितरण किस प्रकार किया जाए।

सोवियत संघ के संविधान ने इस संबंध में एक नई दिशा प्रदान की है। इसमें उस देश के राजनैतिक ढांचे की व्यवस्था है, और साथ ही आर्थिक ढांचा भी नियत कर दिया गया है। आम्बेडकर ने कहा कि समाज के आर्थिक स्वरूप का निर्धारण कर देना वैयक्तिक स्वतंत्रता पर आघात है। लेकिन आगे उन्होंने यह भी कहा कि वैयक्तिक स्वतंत्रता के संरक्षण का तकाजा है कि संविधान समाज के आर्थिक स्वरूप का निर्धारण करे।

उनका विचार था कि राजनैतिक स्वतंत्रता के चार स्तम्भ है: (1) व्यक्ति अपने में सम्पूर्ण है, (2) व्यक्ति के कुछ अहरणीय अधिकार हैं जिन्हें संवैधानिक गारंटी मिलनी चाहिए, (3) किसी व्यक्ति को विशेष सुख-सुविधाएं प्राप्त करने की लालच में अपने संवैधानिक अधिकारों का परित्याग नहीं करना चाहिए, (4) सरकार को व्यक्तिगत आधार पर किसी इंसान को अन्य व्यक्ति को नियंत्रित रखने का अधिकार नहीं सौंपना चाहिए। बेरोजगारों को काम और जीने का मूल अधिकार त्यागने को विवश होना पड़ता है। उन्होंने आगे कहा कि सरकार के नियंत्रण से छूट का प्रभाव यह होता है कि निजी मालिकों की तानाशाही आ जाती है। उन्होंने कहा कि मूल अधिकारों की पूर्ति बहुमत की कृपा पर निर्भर नहीं रहनी चाहिए। आम्बेडकर का विचार था कि मजदूरों को छूट और समानता मिलनी जरूरी है और इनके संतुलन के लिए एक संविधान हो। वे समाजवाद को प्राथमिकता देते थे। उनकी टिप्पणी यह थी कि भारत के श्रमिकों को यह जोर देना चाहिए कि भारतीय संविधान एक राजनैतिक साधन होने के साथ-साथ आर्थिक विकास का भी स्रोत हो।

आम्बेडकर सगठित पार्टी का महत्व स्वीकार करते थे। उन्होंने कहा "यह कांग्रेस पार्टी के अनुशासन को ही श्रेय जाता है कि प्रारूप समिति सदन में संविधान विधेयक का संचालन कर पाई। पार्टी की इस बात के लिए प्रशंसा की जानी चाहिए कि सदन में प्रारूप समिति को कोई कठिनाई नहीं हुई।"[7] धाराओं को पारित करने और संशोधन उपस्थित करते समय श्री वी० शिवाराव ने भी कहा कि कांग्रेस पार्टी ने अपने बहुमत के बूते पर कभी कोई प्रावधान शामिल कराने या निकलवाने का प्रयत्न नहीं किया। आम्बेडकर ने संवैधानिक नैतिकता पर विशेष बल दिया।

कुल मिलाकर, उनके भाषणों में दृढ़ता और स्पष्टता की झलक हमेशा मिली। दो मुद्दों—सुदृढ़ केन्द्र और मूल अधिकारों का स्थान—पर उनका समर्थन बहुत ही सहायक सिद्ध हुआ।[8]

7 के० स० बहस भाग-11   8 मुंशी के० एम० ऊपरलिखित

विपक्षी नेता

आम्बेडकर ने 27 सितम्बर, 1951 को मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया। वे निराश होकर मंत्रिमण्डल से बाहर आए।

शिडल्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन और महाराष्ट्र की शेतकारी कामगार पार्टी के बीच चुनाव समझौते की बात चलाई गई। दूसरी ओर शिडयूल्ड कास्ट्स फेडरेशन और समाजवादी नेताओं के बीच भी वार्ता हुई। जयप्रकाश नारायण और अशोक मेहता ने नए विपक्ष के बारे आम्बेडकर से विचार विमर्श किया। उनके विचार में शेतकारी कामगार पार्टी के नेता शंकरराव मोरे एक साम्प्रदायिक व्यक्ति थे और उनकी पार्टी में मराठों का प्रभुत्व था। वह पार्टी मार्क्सवाद से भी प्रभावित थी। जयप्रकाश नारायण ने आम्बेडकर को बताया कि श्री मोरे साम्यवाद समर्थक हैं और वे अपनी पार्टी को साम्यवादी दल में भी विलीन करना चाहते हैं। आम्बेडकर ने कहा कि यदि ऐसा है तो मोरे लोगों को तबाह करना चाहते हैं। उन्होंने भाऊराव गायकवाड़ को सलाह दी कि वे शेतकारी कामगार पक्ष को पूरा सहयोग न दें। फिर भी उन्होने अपने अनुयाइयों से कहा कि वे जेधे, मोरे और राउत (सभी शेतकारी पार्टी के नेता) का समर्थन करें। उनका कहना था कि शेतकारी कामगार पार्टी का नाम कुछ भी क्यों न हो यह एक साम्प्रदायिक दल है जिस पर मराठों का आधिपत्य है। शेतकारी कामगार पार्टी ने प्रचार किया कि शि० का० फे० साम्यवादियों का समर्थन करेगी। इन परिस्थितियों में दोनों दलों के बीच सहयोग के द्वार सदा के लिए बंद हो गए। आम्बेडकर हिन्दू महासभा और जनसंघ को साम्प्रदायिक दल मानते थे।[1]

वयस्क मताधिकार के आधार पर भारत के पहले आम चुनावों के पूर्व शि० का० फे० ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से सहयोग किया और नवम्बर 1951 में उसके साथ चुनाव समझौता कर लिया। उन्होंने लोगों से अनुरोध किया कि वे प्र० सो० पा० के उम्मीदवारों को वोट दें। वे पूछते थे "लोग ऐसा क्यों सोचते हैं कि मैं राजनीति में भी अछूत बना रहूं।"

शि० का० फे० ने 1952 के आम चुनावों के लिए अपना चुनाव घोषणा पत्र जारी किया। इसमें कुछ सिद्धांत रखे गए, भारतीय समानता के अधिकारी हैं, शि०

1 आम्बेडकरर्स लेटर्स टू गायकवाड,

का० फे० प्रत्येक नागरिक को धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक स्वतंत्रता दिलायेगा, सरकार लोगों का अभाव और भय निवारण करेगी, स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृभाव कायम करने का प्रयत्न करेगी, राष्ट्र द्वारा राष्ट्र का, वर्ग द्वारा वर्ग का, और मानव द्वारा मानव का दलन एवं शोषण सहन नहीं करेगी और संसदीय लोकतंत्र पर चलेगी। चुनाव घोषणापत्र में कश्मीर का बटवारा किए जाने की वकालत की गई थी। पार्टी बीमा कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण और नशाबंदी निवारण के पक्ष में थी।

शि० का० फे० ने अन्य दलों के साथ सहयोग के सिद्धांत भी निर्धारित किए थे (1) निर्दलीय उम्मीदवारों का समर्थन नहीं, (2) हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जैसे प्रतिक्रियावादी दलों के साथ कोई सहयोग नहीं, (3) पिछड़ी जाति-संगठनों के साथ काम चलाऊ मेल, (4) कम्युनिस्ट पार्टी के साथ मेल नहीं, (5) स्वेच्छाचारी दलों पर विश्वास नहीं, (6) दलों की विविधता नहीं होनी चाहिए। उनका आदर्श दो दलीय लोकतंत्र था।

नेहरू ने अपने चुनाव भाषणों में सोशलिस्टों और शि० का० फे० के सहयोग को बेमेल बताया और इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया कि केबिनेट की बैठकों में आम्बेडकर ने भारत की विदेश नीति का कभी विरोध नहीं किया हालांकि वे लगभग चार साल तक मंत्री रहे।

जनवरी 1952 में आम्बेडकर लोकसभा का चुनाव हार गए। उनकी पराजय बड़ी महत्वपूर्ण थी। इसका कारण उनकी यह दलील थी कि कश्मीर का विभाजन कर दिया जाए, बम्बई का वह भाषण जो उन्होंने मुसलमानों की सभा में दिया कि मुसलमानों के लिए पृथक मतदान की व्यवस्था की जाए, तथा जनता के बीच कोई सकारात्मक भाषण न देना और सबसे अधिक एक असंगठित पार्टी भी उनकी हार का कारण बनी। उनके पास कोई वैकल्पिक कार्यक्रम भी नहीं था, उन्होंने सिर्फ कांग्रेस को हराना ही अपना लक्ष्य रखा।[2]

मार्च 1952 के अंत में आम्बेडकर राज्य सभा के लिए चुन लिए गए। मई 1954 में भी उन्होंने लोकसभा के लिए उप-चुनाव लड़ा किंतु वे हार गए। अब उनकी समझ में आया कि जिस पार्टी का गांवों में समर्थन नहीं है, वह नहीं चल सकती।[3]

1937 से ही आम्बेडकर बम्बई धारा सभा के सदस्य थे। वे तब तक इस पद पर रहे जब तक उन्हें वाइसराय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल में शामिल किया गया।

2 कीर, ऊपरलिखित

3 यथोपरि

बम्बई के मुख्यमंत्री वी०जी० खेर ने आम्बेडकर की प्रशंसा में कहा था कि वे विपक्षी नेता होने के नाते लाभदायक और रचनात्मक आलोचनाएं किया करते थे और कमियां बताया करते थे।

अगस्त 1951 में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र देने के बाद आम्बेडकर फिर एक विपक्षी नेता बन गए। संविधान के अनुच्छेद 19(2) के संशोधन पर उनके भाषण की इस प्रकार प्रशंसा की गई "उनकी सारगर्भित कटाक्षपूर्ण भाषा और जटिल संवैधानिक तथा विधिगत प्रश्नों को लेकर दिए गए सुगम्य भाषण सर्वोत्तम भाषणों में गिने जा सकते है, जो संसद में दिए गए।"[4]

कुल मिलाकर विपक्ष को प्रस्तुत करने की वह खूबी अब उनमें नहीं रही थी और न ही उतनी तेजी जो उनमें पहले पायी जाती थी।

---

4 टाइम्स आफ इण्डिया 19-5-1951

बौद्ध धर्म में दीक्षा

आम्बेडकर का विश्वास था कि जीवन के लिए धर्म आवश्यक है और इसके बिना समाज संचालन भी कठिन है। उनके अनुसार धर्म मानव की सामाजिक थातियों में से है। वे धर्म के तो समर्थक थे किंतु उसके नाम पर वितंडाबाद के विरुद्ध थे। धर्म मानव को क्रियाकलापों की प्रेरणा देता है। उनका कहना था "आदमी केवल रोटी पर ही जीवित नहीं रह सकता। उसको मस्तिष्क भी मिला हुआ है जिसे विचारों की खुराक चाहिए।"[1]

आम्बेडकर के अनुसार धर्म का मूल्यांकन सामाजिक मापदण्डों से किया जाना चाहिए जो सामाजिक आचार विचारों पर आधारित है।[2] "उन्होंने धर्म का सम्बंध मानव के सामाजिक प्राणी होने से जोड़ा है। उनकी यह टिप्पणी है — "जिस धर्म में अपने ही अनुयाइयों के बीच भेदभाव है वह धर्म नहीं पक्षपात है, जो धर्म अपने करोड़ों अनुयाइयों को कुत्तों और अपराधियों से भी बदतर मानता है और उन पर नारकीय मुसीबतें बरसाता है वह धर्म हो ही नहीं सकता।"[3] वे ऐसे धर्म की तलाश में थे जिसमें आध्यात्मिक विवेक हो, अखिल विश्व के लिए समान हो, जो सभी देशों और सभी नस्लों के लिए शाश्वत हो।[4] वे हिन्दू धर्म को कर्मकाण्ड, सामाजिकता, राजनीति और स्वच्छता पालन के कायदे-कानूनों की एक मिली-जुली खिचड़ी मानते थे।[5]

आम्बेडकर ने धर्म के चार लक्षण बताए हैं :— (1) धर्म नैतिकता की दृष्टि से प्रत्येक सामाज का मान्य सिद्धांत है (2) धर्म बौद्धिकता पर टिका होना चाहिए जिसे दूसरे शब्दों में विज्ञान कहा जा सकता है (3) इसके नैतिक नियमों में स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व भाव का समावेश हो। जब तक सामाजिक स्तर पर किसी धर्म में यह तीन गुण विद्यमान नहीं होंगे, धर्म का विनाश हो जाएगा। (4) धर्म को

---

1 कीर ऊपरलिखित

2 आम्बेडकर—अनीहिलेशन आफ कास्ट

3 कीर ऊपरलिखित

4 आम्बेडकर ऊपरलिखित

5 यथोपरि

दरिद्रता को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। उनके अनुसार हिन्दू जिसे धर्म कहते हैं, वह धार्मिक आदेशों और निषेधों का पुलंदा है।[7] उन्होंने हिन्दू धर्म के कुछ अवगुणों को इस प्रकार गिनाया है (1) इसने नैतिक जीवनयापन की स्वतंत्रता के द्वार बंद कर रखे हैं, (2) इसमें सिर्फ उपदेशों की भरमार है (3) नियम विधान अलग-अलग वर्गों के लिए भिन्न-भिन्न है। इन नियमों को अंतिम माना गया है। उन्होंने कहा कि ऐसे धर्म को मिटा दिया जाना चाहिए और ऐसे धर्म को खत्म करने के प्रयत्न अधार्मिक नहीं होंगे।[8]

आम्बेडकर चाहते थे कि 'नियमबद्ध धर्म' के स्थान पर 'सिद्धांतों का धर्म' होना चाहिए, जब वह परिवर्तन होगा तभी धर्म 'सच्चा धर्म' कहला सकता है। उनका कहना था कि धर्म के लिए आवश्यक है: (1) हिन्दुओं का एक सर्वमान्य धर्मग्रन्थ, (2) जन्मजात पुरोहितवाद की समाप्ति और सबके लिए मुक्त परीक्षाओं के आधार पर पुरोहितों का चुनाव, (3) पुरोहितों के लिए सरकारी प्रमाणपत्र की अनिवार्यता, (4) कानून द्वारा पुरोहितों की संख्या की सीमाबंदी, (5) पुरोहितों की नैतिकता, विश्वासों और पूजाविधि पर सरकारी निगरानी।''[9]

दीक्षा मार्ग

आम्बेडकर के बौद्धधर्म के प्रति झुकाव के प्रमाण चालीस साल पहले से मिलते हैं। जब वे 16 साल के थे तो केलुशकर ने उन्हें बुद्ध की जीवनी भेंट की थी। 1945 तक के अपने 30 साल के जीवन काल में उन्होंने सवर्ण हिन्दुओं से कुछ अनुभव प्राप्त किए और उन्होंने अछूतों को हिन्दुओं से अलग करने के लिए पृथक् निर्वाचनाधिकार की जीतोड़ कोशिश की। 1945 में उन्होंने एक बौद्ध सम्मेलन में भाग लिया। 20 जून, 1946 को उन्होंने 'पीपुल्स एजूकेशन सोसायटी' की ओर से एक कालिज स्थापित किया, जिसका नाम सिद्धार्थ कालिज रखा। 1948 में उन्होने एल0 नरसू की पुस्तक '6 एसेंस ऑफ बुद्धिज्म' की प्रस्तावना लिखी। 1950 में दिल्ली में उन्होंने आधुनिक बौद्धों की प्रथम शोभायात्रा में भाग लिया। दिसम्बर 1954 में उन्होंने तीसरे अर्न्तराष्ट्रीय बौद्ध संघ में भाग लिया। कहा जाता है कि वहीं उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने का फैसला किया। डा0 आम्बेडकर 1950 से ही खुलकर

6 बुद्धा एण्ड द फ्यूचर आफ रिलिजन पैरा 17-20

7 आम्बेडकर ऊपरलिखित

8 यथोपरि

9 आम्बेडकर ऊपरलिखित

बौद्ध धर्म के प्रति झुक गए थे। 24 मई, 1956 को उन्होंने बम्बई में बुद्ध जयंती पर यह घोषणा की कि अक्तूबर के महीने में वे बौद्ध धर्म की दीक्षा लेंगे। 23 सितम्बर, 1956 को उन्होंने एक प्रेस नोट जारी किया कि वे नागपुर में दशहरे वाले दिन 14 अक्तूबर, 1956 को सबेरे 9 से 11 बजे के बीच में बौद्ध धर्म ग्रहण करेंगे। नागपुर का ऐतिहासिक स्थान उन्होंने इसलिए चुना कि प्राचीन काल में वहां बौद्ध लोगों का बहुत प्रभाव था। डी0 सी0 अहीर का दावा है कि वह आम्बेडकर का ही प्रभाव था कि भारत के राष्ट्रीय ध्वज में अशोक चक्र को स्थान मिला और सारनाथ के अशोक स्तम्भ को भारत का राष्ट्रीय प्रतीक बनाया गया।[10]

जब आम्बेडकर ने हिन्दू धर्म का परित्याग किया तो बहुत से आलोचकों ने एक सवाल उठाया था कि आम्बेडकर 20 साल तक क्यों इंतजार करते रहे? कहा जाता है कि उन्होंने जान बूझ कर महात्मा बुद्ध की ढाई हजारवीं जयंती तक रुके रहना ठीक समझा। बी० एस० मूर्ति ने इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया है: "केवल यही बात समझ में आती है कि हिन्दू धर्म में जो कुछ भी सर्वश्रेष्ठ था वह सब उन्हें प्रिय था।"[11]

हिन्दुओं ने उनके साथ जो अपमानजनक वर्ताव किया, संस्कृत और वैदिक ज्ञान से वंचित रखा; बड़ौदा और बम्बई न्यायालय के उनके कटु अनुभव, इन सब बातों से मिलकर उन पर यह छाप डाल दी थी कि हिन्दू धर्म और समाज में अछूतों को कभी भी न्याय मिल ही नहीं सकता। उन्हें विश्वास था कि हिन्दू समाज में अछूतों की व्यक्तिगत या सामाजिक रूप से गतिशीलता बहुत मुश्किल है। वे जानते थे कि हिन्दू धर्म में दया, समानता और स्वतंत्रता को स्थान नहीं है। वे त्याग के विरुद्ध थे। वे बौद्ध धर्म की ओर इसके समानता के नैतिक आधार, न्याय और व्यापक मानवीयता के कारण आकृष्ट हुए। श्रीनिवासन, जगजीवनराम और एम० जी० राजा ने धर्म परिवर्तन का विरोध किया।

अखिल बम्बई जिला महार में आम्बेडकर ने 30-31 मई, 1936 को कहा था कि छुआछूत की समस्या वर्ग द्वेष की समस्या है। वह दो समाजों के बीच कलह का कारण है: सवर्ण और अछूत। वे सोचते थे कि हिन्दू धर्म में रहकर जातिप्रथा समाप्त करने का प्रयास मीठे जहर को चाटने के समान है। इसलिए उन्होंने हिन्दू धर्म को छोड़कर बाहर से शक्ति प्राप्त करने पर जोर दिया।

---

10 डी० सी० अहीर बुद्धिज्म एण्ड आम्बेडकर

11 बी० एस० मूर्ति डिप्रेस्ड एण्ड ओपरेस्ड

धम्म और धर्म

आम्बेडकर बौद्ध धर्म संघ 'धम्म' को ही सच्चा धर्म मानते थे। वे समझते थे कि धर्म केवल व्यक्ति तक ही सीमित है, जबकि धम्म का रिश्ता सामाजिक है। उन्होंने धम्म को धर्मपरायणता की संज्ञा दी यानी जीवन के हर क्षेत्र में मानव मानव के बीच मधुर संबंध। समस्त मानव जाति का नैतिक पुनरुज्जीवन एवं सामाजिक मुक्ति बौद्ध जीवन-पद्धति का उद्देश्य है। उनके अनुसार केवल चार धर्म गुरू हैं: श्रीकृष्ण, बुद्ध, ईसा और मौहम्मद। इनमें से उन्हें बुद्ध सर्वाधिक पसंद आए जिन्होंने कहा है कि उनके अनुयायी उनका अंधानुसरण न करें बल्कि अपने विवेक से काम लें। बौद्ध धर्म ईश्वर में आस्था नहीं रखता किंतु नैतिकता को ईश्वर का स्थान प्राप्त है। बौद्ध धर्म दर्शन के निम्नांकित गुण हैं :- (क) बौद्ध धर्म इहलोक में ही विश्वास रखता है और पाप-पुण्य का फल मृत्यु के बाद नहीं वरन् इसी जीवन में ही प्राप्त हो जाता है ऐसा मानता है (ख) वह धर्म वस्तुपरक है, आदर्श परक नहीं (ग) वह स्वतंत्रता समानता, सत्य और न्याय पर आधारित है – यह मानव को प्रेम और शांति का अमृत पिलाता है (घ) वह गतिशील, तर्क-संगत और सर्वग्राही धर्म है (च) जीवन की व्याख्या एवं इसके अर्थ और जन्म-मरण के उद्देश्य और उसके धर्म स्पष्ट हैं, सुगम्य और तर्क संगत है (छ) सबसे बड़ी बात यह है कि वह धर्म मानव की ही बात करता है उससे परे कुछ नहीं जबकि हिन्दू धर्म का सनातन सिद्धांत है (क) हिन्दू समाज आज भी वैसा ही है जैसा सनातन काल में था। इसके जो सुधार हुए हैं वे भी क्षुद्र हैं, (ख) अस्पृश्यता को धार्मिक मान्यता प्राप्त हैं, वह इस हिन्दू समाज की जड़ में फंसी हुई है (ग) जाति प्रथा हिन्दू धर्म की आधार शिला है।[12]

आम्बेडकर के अनुसार हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म तीन दृष्टियों से एक दूसरे से भिन्न थे। हिन्दू धर्म आत्मा, परमात्मा और वर्ण व्यवस्था में विश्वास रखता है और बुद्ध धर्म में न आत्मा का अस्तित्व है न परमात्मा का और न ही वर्णाश्रम का।

आम्बेडकर हमेशा सोचते थे कि समाज और मानव के पुर्निमाण के लिए एक धार्मिक आधार की आवश्यकता है।[13] ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन (बी०बी०सी) से एक प्रसारण में आम्बेडकर ने बौद्ध धर्म को ग्रहण करने के कारणों पर प्रकाश डाला था। उनका कहना था, बौद्ध धर्म के तीन ऐसे गुण है जिनकी समानता नहीं हो सकती। ये हैं प्रज्ञा, करुणा और समता। उन्होंने कहा है कि बौद्ध धर्म ईसाई धर्म की तरह सताये गए और पद्दलितों के लिए आशा का एक दीप है।[14]

---

12 देव और वाधे ज० आम्बेडकर्स कनवर्जन

13 यथोपरि

14 आम्बेडकर्स स्पीचस खण्ड-II

आम्बेडकर समझते थे कि बौद्ध धर्म ही सच्चा धर्म है क्योंकि वह एक ऐसे जीवन पथ की ओर अग्रसर करता है, जिसमें ज्ञान, सन्मार्ग और दया है। उन्होंने कहा, "बौद्ध धर्म भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। मैंने इस बात का ख्याल रखा है कि मेरे धर्म परिवर्तन से इस देश की परम्पराओं, संस्कृति और इतिहास पर आघात न पहुँचे।"[15] 13 अक्तूबर, 1956 को नागपुर में उन्होंने एक भेंट में कहा था कि मैं बौद्ध बनने के बाद शि० का० फे० का सदस्य नहीं रहूंगा। उनके सामने दो ही उद्देश्य थे 'बुद्धं शरणम् गच्छामि,' और 'संघ शरणम् गच्छामि।' उन्होंने ज्ञान की प्रतिमूर्ति बुद्ध के चरणों में समर्पण किया। उन्होंने संघ के प्रति समर्पण किया। संघ का तात्पर्य सामाजिक जीवन से था। उनके लिए बुद्ध अपने युग के सबसे बड़े समाजवादी थे। वे बुद्धिवादी थे और उन्होंने ब्राह्मणवाद के एकाधिकार की जड़ें हिला दी।[16]

14 अक्तूबर, 1956 को बौद्ध धर्म में दीक्षा लेने के बाद आम्बडकर ने कहा "गले मड़े धर्म को त्याग कर जो असमानता और उत्पीड़न को मान्यता देता है, मैं आज एक नया जन्म ले रहा हूँ और नरक से मुक्ति प्राप्त कर रहा हूं।"[17] उस समय उनका गला भर आया जब उन्होंने कहा "मैं हिन्दू धर्म को त्यागता हूँ।" उन्होंने अपने अनुयाईयों को 1935 का अपना वह प्रण याद दिलाया कि "मैं हिन्दू पैदा तो हुआ हूँ परंतु हिन्दू रहकर मरूँगा नहीं" उन्होंने इस प्रण को पूरा किया। इस बात पर संतोष की सांस ली कि मैंने भारत में बौद्ध धर्म की पुनर्स्थापना का सूत्रपात कर दिया है।

बुद्ध बनाम मार्क्स

भारत जापान संस्कृति परिषद् के सम्मान में आयोजित समारोह में आम्बेडकर ने कहा कि वर्तमान और भावी पीढ़ी को अंततोगत्वा बुद्ध या मार्क्स दोनों में से एक के सिद्धांतों को चुनना पड़ेगा। उन्होंने कहा—यदि बुद्ध के उपदेशों को स्वीकार नहीं किया गया तो एशिया में भी यूरोप की भांति संघर्षों का दौर शुरू हो जाएगा।

बुद्ध ने कहा है "संसार दुखों का सागर है।" उन्होंने शोषण शब्द का उपयोग नहीं किया है परंतु उन्होंने सद्धर्म की नीव दुखवाद पर रखी है। बुद्ध ने दुख शब्द का आशय सम्पति से लिया है। उन्होंने कहा कि किसी भिक्षु की कोई व्यक्तिगत

15 कीर, ऊपरलिखित,

16 महानिर्वाण विशेषांक

17 लेटर्स टू गायकवाड़,

सम्पत्ति नहीं होनी चाहिए। मार्क्स ने कहा है कि शोषण रोकने के लिए समाज के सारे उत्पादन साधनों पर सरकार का अधिकार होना चाहिए।

मई 1956 में लंदन से बी० बी० सी० के एक प्रस्ताव में आम्बेडकर ने कहा "बौद्ध धर्म तीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है जो अन्य धर्मों में दुर्लभ है वे हैं—प्रज्ञा, करुणा और समता। उन्होंने कहा कि बौद्धधर्म कार्लमार्क्स का सम्पूर्ण उत्तर है। उनके अनुसार दुख निवारण के लिए बौद्ध धर्म का मार्ग ही सुरक्षित मार्ग है। इसी के मार्ग पर चलकर मार्क्सवाद से भी बचा जा सकता है।"[18]

20 नवम्बर, 1956 को आम्बेडकर ने काठमाण्डू में बौद्धों के चौथे विश्व सम्मेलन में भाषण किया। इसकी अध्यक्षता नेपाल के महाराजाधिराज महेन्द्र ने की थी। उन्होंने कहा-बुद्ध धर्म तभी जीवित रह सकता है जब इसे साम्यवाद के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया जाए। उनका विचार था कि साम्यवाद शक्ति के प्रयोग पर आधारित है। दूसरी ओर बुद्ध धर्म लोकतान्त्रिक प्रणाली का समर्थक है। उन्होंने कहा कि ईसाई धर्म तत्व और व्यवहार में 90 प्रतिशत बुद्ध धर्म का अनुयायी है। अंत में उन्होंने चेतावनी दी कि साम्यवाद की सफलता के प्रलोभन में न आएं।

आम्बेडकर कहते थे कि सबसे बड़ा धर्म समाज व्यवस्था को बदलना है। उनका विश्वास था कि "यदि सामाजिक ढांचा नहीं बदला गया तो यह जल्दी ही ढह जाएगा ?"[19]

आलोचना

आम्बेडकर ने जो सामूहिक धर्म परिवर्तन कराया, भारतीय इतिहास की यह अभूतपूर्व घटना थी। उनका अनुमान था कि लोगों में धार्मिक वितण्डावाद और बेईमानी के विरुद्ध तर्क संगत विवेक जगाने के लिए धर्म परिवर्तन आवश्यक है। यह मानवता के उत्पीड़न और उसकी दासता के प्रति एक विद्रोह था। यह विद्रोह बौद्ध आंदोलन ने जगाया। यह एक उद्धारक शक्ति थी।

आम्बेडकर के धर्म परिवर्तन को अभी ढाई दशक ही बीते हैं। इसका महत्व और मूल्यांकन भारत के सामाजिक वातावरण में गूंज रहा है और गूंजता रहेगा।

एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि बौद्ध धर्म ग्रहण कर लेने के बाद वे हिन्दू समाज में अपने स्थान से हट गए। परन्तु उनका दृष्टिकोण था कि उन्हें एक नया व्यक्तित्व मिला हालांकि उच्च हिन्दू समाज ने इसे स्वीकारा नहीं। एस० खरात ने

18 यथोपरि

19 इलस्ट्रेटिड वीकली आफ इण्डिया 12-7-1953

विचार व्यक्त किया "धर्म परिवर्तन का उद्देश्य आर्थिक नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक है।" अछूतों ने यह सोचना शुरू कर दिया कि उनका अलग स्थान है। इन लोगों का आम्बेडकर में जो विश्वास था उसी के कारण इतनी बड़ी संख्या में लोगों ने धर्म परिवर्तन किया। नेहरू के अनुसार "बुद्ध बहुत हद तक एक सामाजिक क्रांति दूत थे।"[20] इससे अछूतों को अपनी ओर आकर्षित किया।

हैरोल्ड आइजक के अनुसार "आम्बेडकर द्वारा बौद्ध धर्म की दीक्षा लेना उनकी राष्ट्रीय भावना का ही द्योतक था। वे कहा करते थे "मैं भारत,का रहने वाला एक भारतीय हूं।[21] उन्होंने सोचा—बौद्ध धर्म एक भारतीय धर्म है। उन्हें भारत की अखण्डता और एकता में पूरा विश्वास था। उन्होंने कहा कि धर्म परिवर्तन के समय मैंने यह विचार करके देख लिया है कि इससे भारतीय संस्कृति और ऐतिहासिक परम्पराओं को ठेस न पहुंचे। बौद्ध धर्म पूर्णत: भारतीय है और गौतम बुद्ध न केवल भारत के उद्धारक थे बल्कि सम्पूर्ण विश्व के उन्नायक थे। हिन्दू भी बौद्ध संस्कृति की विरासत के समान भागीदार हैं।[22]

यह प्रश्न उठाना निरर्थक है कि क्या बुद्ध मार्क्स का स्थान ले सकते हैं, क्योंकि दोनों महापुरुषों ने भिन्न-भिन्न युगों में अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। मार्क्स के सिद्धांत भौतिकवादी धारणाओं पर आधारित है और वह विश्व को इसी दृष्टि से देखते हैं। मार्क्स ने सामाजिक क्रांति के लिए नियमों का प्रतिपादन किया है और वह इतिहास के भौतिक पक्ष पर ही जोर देते हैं। उनके लिए हिंसा-अहिंसा का प्रश्न अप्रासांगिक है। मार्क्स ने समाज में परिवर्तनों पर बल दिया है परंतु हिंसा पर बल नहीं दिया।

आम्बेडकर ने मार्क्सवाद पर प्रहार किया और बौद्ध धर्म पर बल दिया परंतु धर्म परिवर्तन की समस्या का मानवीय पक्ष उनके मार्क्स सम्बधी गलत दृष्टि कोण के कारण अमान्य हो गया। बौद्ध धर्म की ओर लोगों को आकर्षित करने के लिए उन्होंने एक नए सिद्धांत का प्रतिपादन किया कि किसी समय अछूत बौद्ध थे। इस प्रकार उन्होंने अपने ही उस पूर्व सिद्धांत के प्रति विरोध किया कि अछूतों की समस्या वर्ग संघर्ष की समस्या है। वे इस प्रश्न का कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं कर पाए कि धर्म परिवर्तन के बाद अछूत समुदाय सामाजिक शिकजे से कैसे मुक्त होगा और उसके आर्थिक विकास और प्रगति में धर्म परिर्वतन किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकता है। इसे प्रतिक्रियावादी कार्य बताया गया क्योंकि मार्क्स के विषय में उनकी भ्रांत धारणा

20 जे० एल० नेहरू डिस्कवरी आफ इण्डिया

21 ईस्साक्स इण्डियाज एक्स अनटचाएबलस,

22 नवयुग 13-4-1947

थी। इस समस्या का जो समाधान आम्बेडकर ने प्रस्तुत किया उसकी तुलना ऐसे विद्यार्थी से की जा सकती है जो पहले स्वयं ही कुछ उत्तर पुस्तिका पर लिख दे और फिर उसको सही ठहराने के लिए सिद्धांत गढ़े।

जेलियट ने इस बात को कुछ और मुखर होकर कहा "आम्बेडकर की नवधर्म दीक्षा मार्क्सवाद के विरुद्ध की गई मोर्चा बंदी थी।"[23]

उनके धर्म परिवर्तन के दो मुख्य उद्देश्य बताए जा सकते हैं। एक तो यह कि वे हिन्दू समाज व्यवस्था के विरुद्ध थे और दूसरे यह कि वे एक धार्मिक जीवन जीना चाहते थे। वे समझते थे कि धर्म ही मानव जीवन में समानता ला सकता है और मानव तथा समानता के लिए 'धम्म' सबसे अनुकूल है। चूंकि वे समझते थे कि "बुद्ध धर्म अधिक लोकतांत्रिक, नैतिक और समतावादी हैं इसलिए यही सबसे श्रेष्ठ धर्म है।"[24] उन्होंने जाति से मुक्ति पाने का और वर्ग संघर्ष से बचने का यही मार्ग उत्तम समझा।

आम्बेडकर ने इस बात पर जोर दिया कि धम्म ही सद्धर्म है। उन्होंने एक पुस्तक लिखी "बुद्ध और उनका धम्म"। इस पुस्तक की कटु आलोचनाएं हुई। "आम्बेडकर का धर्म घृणाधारित है जबकि बुद्ध का धर्म प्रेम और दया का संदेश है। उन्होंने समाज सुधार के उद्देश्यों के लिए अधार्मिक मार्ग दिखाया है।"[25] 'लाइट ऑफ धम्म' की टिप्पणी में कहा गया "बौद्ध धर्म में जो अंश उन्हें असुविधाजनक लगे उनको उन्होंने भिक्षुओं के क्षेपक कहकर निंदा की है।" डा० रीज डेविड ने अपनी पुस्तक 'बुद्धिज्म' में कहा है "गौतम एक हिन्दू पैदा हुए, हिन्दू के रूप में पले और हिन्दू ही मरे। उनके उपदेश पूर्णतः भारतीय हैं। वह हिन्दुओं में महान्तम, सर्वाधिक विद्वान और सर्वश्रेष्ठ हिन्दू थे।"[26]

---

23 पटवर्द्धन, चेंज अमंग इण्डियाज हरिजन्स,

24 यथोपरि

25 बुद्धिस्ट जनरल आफ इण्डिया दिस० 1959

26 रेहज डेविडस बुद्धिज्म

अंतकाल

15 अक्तूबर को नागपुर नगर निगम ने आम्बेडकर का नागरिक अभिनन्दन किया। उन्हें एक समाज सुधारक, दार्शनिक और संवैधानिक पंडित बताया गया। 16 अक्तूबर को उन्होंने सामूहिक धर्म परिवर्तन समारोह में भाग लिया।

इसके बाद आम्बेडकर विश्व बौद्ध सम्मेलन में भाग लेने के लिए काठमाण्डू गए। इसका उद्घाटन 15 नवम्बर, 1956 को नेपाल नरेश महेन्द्र ने किया। इस अवसर पर आम्बेडकर ने कहा कि "बौद्ध धर्म केवल धर्म ही नहीं बल्कि एक महान सामाजिक सिद्धांत है।" उन्होंने बुद्ध और मार्क्स पर भी एक भाषण दिया। उन्होंने कहा कि बुद्ध निजी सम्पत्ति का अधिकार समाप्त करने के मार्ग में आड़े नहीं आते हैं। बुद्ध और मार्क्स के मार्ग अलग-अलग हैं। उनके अनुसार बुद्ध का मार्ग सुरक्षित और सुदृढ़ है।

वे दिल्ली लौट आए और उन्होंने दलाई लामा के सम्मान में आयोजित समारोह में भाग लिया। 4 दिसम्बर को वे राज्य सभा की बैठक में शामिल हुए। उन्होंने भारतीय रिपब्लिकन पार्टी में शामिल होने के बारे में जी० के० अत्रे और एस० एम० जोशी को पत्र लिखे।

6 दिसम्बर के सवेरे श्रीमती आम्बेडकर जब रोजमर्रा की तरह सोकर उठी तो उन्होंने पाया कि डाक्टर आम्बेडकर दुनिया में नहीं रहे। सोते-सोते ही वे परलोक सिधार गए थे क्योंकि उन्हें मधुमेह-जन्य मनस्ताप का भयंकर दौरा पड़ा।

पण्डित नेहरू, गोबिन्द बल्लभ पंत, जगजीवन राम और दूसरे लोग तुरंत उनके निवास स्थान पर जगह-जगह से पहुंचे और उनके पार्थिव शरीर को बम्बई भेजने का प्रबंध किया गया।

लोकसभा और राज्य सभा के सचिवों ने उन पर फूल मालाएं चढ़ाईं। संसद के अनेक सदस्यों, प्रमुख वकीलों और विद्वानों ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की।

उनका पार्थिव शरीर सवेरे तीन बजे सांताक्रूज हवाई अड्डे पर पहुंचा उस समय वहां हजारों व्यक्ति मौजूद थे। उसे फिर उनके निवास स्थान राजगृह ले जाया गया। दिवंगत नेता के दर्शन के लिए लाखों लोग उमड़ पड़े। बम्बई जैसे अनेक शहरों में देखते ही देखते हड़ताल का दृश्य उपस्थित हो गया। जगह-जगह जुलूस नजर आने

लगे। शवयात्रा चार घंटे में दादर श्मशान घाट पर पहुंची। बौद्ध भिक्षुओं ने दाह संस्कार किया। उस समय दसियों लाख नर-नारी शोकाकुल खड़े थे। श्मशान पर ही एक लाख से ज्यादा लोगों ने धर्म परिवर्तन किया।

भदन्त आनन्द कौशल्यायन, मलाया और श्रीलंका के भिक्षुओं ने श्रद्धांजलि अर्पित की। इस अवसर पर पी० के० अत्रे ने कहा आम्बेडकर ने अन्याय, उत्पीड़न और असमानता के विरूद्ध लड़ाई लड़ी, उन्होंने हिन्दू धर्म के प्रति कोई विद्रोह नहीं किया बल्कि उसमें सुधार की कोशिश की।

पण्डित नेहरू ने लोकसभा में कहा कि "हिन्दू धर्म में उत्पीड़न के खिलाफ डा० आम्बेडकर विद्रोह के प्रतीक के रूप में जाने जाएंगे। वी० डी० सावरकर, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद और सी० राजगोपालाचारी ने आम्बेडकर को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। प्रमुख समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने उनके पांडित्य का गुणगान किया और अछूतों के उद्धार के लिए किए गए संघर्ष पर प्रकाश डाला। लंदन टाइम्स ने लिखा कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के अस्त के समय भारत का राजनैतिक-सामाजिक इतिहास लिखे जाते समय डा० आम्बेडकर को एक प्रमुख व्यक्तित्व में गिनवाया जाएगा। बर्मा के प्रधान मंत्री ऊनू ने कहा कि आम्बेडकर उन व्यक्तियों में से थे जिन्होंने सामाजिक परिवर्तनों के लिए कार्य किया।

आम्बेडकर के अनुयाइयों ने नई दिल्ली में एक बैठक बुलाई और सरकार से अनुरोध किया कि उनकी मृत्यु के कारणों की पूरी जांच कराई जाए। 26 नवम्बर, 1957 को पण्डित पंत ने लोकसभा में घोषणा की कि डा० आम्बेडकर की स्वाभाविक मृत्यु हुई थी।

जीवन झांकी

चालीस साल तक आम्बेडकर ने राजनीति के अनेक उतार-चढ़ाव देखे। उन्होंने अछूतों को सार्वजनिक तालाबों से पानी भरने का अधिकार दिलाने के संघर्ष का सूत्रपात किया, उन्हें पृथक मताधिकार दिलाने की जीतोड़ कोशिश की। पहले उन्होंने 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' और बाद में 'शिड्यूल्स कास्ट्स फेडरेशन' का गठन किया। 1942 में वे वाइसराय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल के श्रम सदस्य नियुक्त किए गए, और बाद में स्वतंत्र भारत के प्रथम विधि मंत्री बनाए गए। वह संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे और भारतीय संविधान के निर्माता कहलाए। जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने हिन्दू धर्म त्याग दिया और बौद्ध धर्म अपना लिया। उन्होंने सामाजिक उत्थान से लेकर धार्मिक सुधारों तक आंदोलन चलाए।

जब उन्होंने यह अनुभव किया कि अब राजनैतिक स्वतंत्रता मिलने वाली है तो उन्होंने वयस्क मताधिकार पर जोर दिया। उनकी समस्त विचार धारा धार्मिक जागृति और सामाजिक सुधारों का संगम थी। उन्होंने मानव जीवन के विराट रूप पर बल दिया। उनका विश्वास था कि भौतिक और आध्यात्मिक चेतना के बीच एक सही संतुलन आवश्यक है, क्योंकि इसके अभाव में विकासशील समाज पनप ही नहीं सकता।

पांडित्यपूर्ण व्यक्तित्व

आम्बेडकर की ज्ञान पिपासा, पुस्तकों के प्रति उनका उत्कट प्रेम और उनका पांडित्य बेजोड़ थे। उन्होंने इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, विधि और संविधान विषयों का गहन अध्ययन किया। इन विषयों में आम्बेडकर ने इंगलैंड और अमेरिका के तीन जगत प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों से सर्वोच्च डिग्रियां प्राप्त कीं। उनकी ज्ञान के लिए बलिदान भावना उत्तरोत्तर बढ़ती ही रही। वे एक गहन अध्ययनशील व्यक्ति थे और सात भाषाओं के ज्ञाता थे।

उन्होंने अपने बंगले राजगृह में एक अच्छे पुस्तकालय की सभी सुविधाएं जुटाईं। वे अपने पुस्तकालय में ही रहते, वहीं खाते और वहीं सो भी जाते थे। उनके

पुस्तकालय में विभिन्न विषयों पर नई से नई पुस्तकें उपलब्ध रहतीं। राज नेताओं की जीवनी का एक अलग विभाग था। पुस्तकें उनकी जीवन संगिनी थीं। उन्होंने कहा "मेरे जैसे अन्त्यज को पुस्तकें ही उनके हृदय स्थल तक पहुंचाती हैं।"[1] वे अपने पुस्तक प्रेम को आशिक-माशूक की मोहब्बत बताया करते थे। डी० ई० वाच्या ने कहा "निस्संदेह आम्बेडकर एक ऊंचे विद्वान और विविध ज्ञान के आगार थे।"[2] 1953 में उस्मानिया विश्वविद्यालय ने उन्हें एल० एल० डी० की डिग्री प्रदान की। प्रशस्ति में कहा गया कि "वे लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान, अथक परिश्रमी, योग्यतम वकीलों में से एक, प्रमुख सांसद और भारतीय समाज के पिछड़े और दलित समाज के एक महान समर्थक हैं।पाकिस्तान के बारे में लिखी गई पुस्तक ने अनेक विचारकों और विद्वानों को प्रभावित किया। पुस्तक के आरम्भ में ही उन्होंने सम्प्रदाय और राष्ट्र के अतंर पर प्रकाश डाला। जिन्ना ने यह पुस्तक पढ़ी और 17 सितम्बर, 1944 को गांधीजी को पत्र लिखा जिसमें कहा गया था कि वे इसे अवश्य पढ़ें। गांधीजी ने यह स्वीकार किया कि यह बहुत विद्वतापूर्ण रचना है पर उन्होंने कहा कि इससे मेरी धारणाएं नहीं बदल सकतीं।[3] कई व्यक्ति उनके विचारों से असहमत हो सकते हैं लेकिन कोई व्यक्ति उनकी निष्पक्षता और प्रतिभा से इंकार नहीं कर सकता जिसके साथ उन्होंने इस जटिल विषय को प्रतिपादित किया है।[4]

पहले आम्बेडकर एक प्रोफेसर बनना चाहते थे और एक विद्वान का सा जीवन विताना चाहते थे, परंतु उन्हें राजनैतिक बवन्डर में धकेल दिया गया (यहां हमें लोकमान्य तिलक की याद आती है)। आम्बेडकर बम्बई के कालेज में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर थे। पहली जून, 1935 को वे बम्बई के राजकीय विधि कालिज के प्रधानाचार्य नियुक्त किए गए और 1938 में त्यागपत्र देने तक उस पद पर रहे। उनका अध्यापन अनुकरणीय था चाहे कभी-कभी छात्र उनके विचारों से असहमत भी क्यों न होते हों। एक आदर्श अध्यापक के बारे में उनके अपने विचार थे। उन्होंने कहा कि एक आदर्श अध्यापक को न केवल विद्वान ही होना चाहिए बल्कि उसे स्पष्ट स्वर में बोलना चाहिए। वह सुभाषी हो। मेरी आंतरिक प्रतिभा का विकास प्रो० सेलिगमैन जैसे लोगों के संसर्ग से हुआ है।[5]

कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने 1952 में उन्हें मानार्थ एल० एल० डी० की

---

1 जयंती विशेषांक

2 बी० ई० वच्चा ऊपरलिखित

3 हिंगोरानी ए० टी० टू दी प्रोटोगोनिस्टस आफ पाकिस्तान

4 टाइम्स आफ इण्डिया 19-8-1945

5 नव्युग विशेषांक अप्रैल 1947

डिग्री प्रदान की। उस अवसर पर प्रशस्ति में कहा गया "डिग्री उन्हें भारतीय संविधान का प्रारूप तैयार किए जाने के कार्य की प्रशंसा में दी जा रही है।" कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने उन्हें भारत के प्रमुख नागरिकों में से एक, एक महान् समाज सुधारक और मानव अधिकारों का रक्षक बताया।[6]

आम्बेडकर ने बम्बई उच्च न्यायालय में वकालत भी की। महार होने के कारण सवर्ण हिन्दू उनकी मेज पर चाय पीना तक पसंद नहीं करते थे। शुरू में उनके पास पांच सौ रुपए तक नहीं थे कि वे हाईकोर्ट में वकालत करने के लिए फीस जमा कर सकते।[7] वह अपने मुवक्किलों के प्रति बहुत उदार थे। उनके पास हर देश के हाईकोर्ट के फैसलों और कानून की रिपोर्टों की जिल्दें मौजूद रहती थीं। ऐसा भी अवसर आया कि उनकी शिक्षा और हैसियत को देखते हुए उन्हें उच्च न्यायालय का न्यायधीश बनाने की सम्भावनाएं पैदा हो गई थीं।[8]

शिक्षाविद

आधुनिक भारत के लगभग सभी राष्ट्रवादियों, समाजसुधारकों और सिद्धांत-वादियों ने शिक्षा के क्षेत्र में अमूल्य योगदान किया है। उनमें से कुछ के नाम हैं: तिलक, गोखले, लाजपत राय, आशुतोष मुकर्जी और श्यामाप्रसाद मुकर्जी। आम्बेडकर को भी इन्हीं में शामिल किया जा सकता है। उन्होंने 'पीपुल्स एजूकेशन सोसायटी' की स्थापना की और बम्बई तथा औरंगाबाद में कालेज खोले। वे कहा करते थे कि अवसर प्रदान करने की बड़ी जिम्मेदारी सरकार की है। वे लड़कों और लड़कियों को समान शिक्षा दिलाए जाने के पक्ष में नहीं थे। वे कहते थे कि लड़कियों को बर्क और शेक्सपियर पढ़ाने से क्या लाभ। लड़कियों को घरेलू शिक्षा दी जानी चाहिए।[9] जुलाई 1942 में अमरावती की श्रीमती सुलोचनाबाई डोंगरे की अध्यक्षता में आयोजित दलित जातीय महिला सम्मेलन में उन्होंने नागपुर में कहा मैं किसी समाज की प्रगति का अनुमान इस बात से लगाता हूं कि उस समाज की महिलाओं की कितनी प्रगति हुई है। उन्होंने महिलाओं को स्वच्छ रहने, अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने और हीन भावना त्यागने की सलाह दी। वे ज्यादा बच्चे पैदा करने को अपराध मानते थे।

---

6 जिने रोबिन, डा० आम्बेडकर एण्ड हिज मूवमैंट

7 आम्बेडकर्स लेटर्स टू गायकवाड़

8 डी० ई० वैक्का ऊपरलिखित

9 बम्बई विश्वविद्यालय आम्बेडकर संग्रह भारतीय लेबर पार्टी घोषणापत्र

कैबिनेट मंत्री

आम्बेडकर अधिकार और सम्मान के पात्र थे। उन्हें विद्वता, पांडित्य और तर्क शक्ति के बल पर पदों से विभूषित किया गया। उनमें यह दुर्लभ शक्ति थी कि वे जटिल से जटिल प्रश्न को सरल शब्दों में प्रस्तुत किया करते थे। उनकी पसंद और नापसंद भी ऊंचे दर्जे की थी। हालांकि वे कांग्रेस के विरोधी थे परंतु उन्होंने विधि-मंत्री के रूप में नेहरू मंत्रिमंडल में काम किया और संविधान सभा में संविधान को पास कराया, परंतु जब अपने साथियों से उनका मतभेद हुआ, तो उन्होंने त्यागपत्र दे दिया।

मानव अधिकारों के रक्षक

आम्बेडकर समझते थे कि सरकार एक ऐसा संगठन है जो (1) जनता की जीवन रक्षा, स्वतंत्रता, सुख, भाषा और धर्म पालन के अधिकारों की रक्षा करता है (2) दलित वर्गों को समान अवसर प्रदान करके सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक असमानताओं को दूर करता है और (3) अपने हर नागरिक को अभाव और भय से मुक्ति प्रदान करता है।[10] स्वतंत्रता-पूर्व भारत में उन्होंने भारतीयों की आजादी और अधिकारों की लड़ाई लड़ी। उन्होंने कहा कि स्वतंत्रता मात्र राजनैतिक नहीं, यह सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक भी होनी चाहिए।

आम्बेडकर सोचते थे कि सरकार की सत्ता और व्यक्ति की स्वतंत्रता में संतुलन होना चाहिए। परंतु उनका विचार था कि यदि वैयक्तिक स्वतंत्रता छीन लेने से समाज के हितों को आघात पहुंचता है तो यह अधिकार हरण नहीं होना चाहिए। वे समझते थे कि सरकार तो केवल मानव कल्याण का साधन मात्र है। वे कहते थे कि अच्छी सरकार वही है जो एक समुदाय को दूसरे समुदाय के शोषण से बचाए और देश में आंतरिक उपद्रवों, हिंसा और अव्यवस्था पर नियंत्रण करे।[11]

एक वकील और न्यायशास्त्री होने के नाते वे सभ्य समाज में विधि की भूमिका पर बहुत बल देते थे। उनकी दृष्टि में सामाजिक शांति और जनता के विभिन्न वर्गों के बीच न्याय-व्यवहार में कानून का बहुत बड़ा हाथ होता है। यही तो समानता और स्वाधीनता का प्रहरी है। उनका मत था कि कानून केवल वैधानिक क्रिया ही नहीं, बल्कि यह पूरे समाज और राष्ट्र की कार्य प्रणाली को नियंत्रित रखता

10 आम्बेडकर स्टेटस एण्ड माइनोरिटीज

11 यथोपरि

है। वह हर वर्ग के मानव को उसकी सीमाओं में बांधकर रखता है। कानून ने इंसान को पैदा नहीं किया है बल्कि इंसान ने ही अपनी सुविधा के लिए कानूनों को जन्म दिया है।[12] कानूनों में संशोधनों की सदा गुंजाइश है किंतु यह संशोधन सभी व्यक्तियों की सहमति से होना चाहिए। कानून के सम्बंध में आम्बेडकर की धारणा थी कि वह न केवल दण्ड देकर लागू किया जाए बल्कि यह शिक्षा और सामाजिक भावनाओं के आधार पर लागू हो।[13] वे कहते थे कि मुठ्ठी भर राजनैतिक अधिकार ही लोकतंत्र नहीं कहला सकते बल्कि लोकतंत्र के लिए सामाजिकता एवम् नैतिकता का बहुत बड़ा स्थान है। उनकी दृष्टि से लोकतंत्र का आधार है: स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व, तर्क, मानवीय व्यवहार, विधि का शासन, प्राकृतिक अधिकार और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में वैयक्तिक स्वतंत्रता का महत्व।[14]

आम्बेडकर का कथन था कि व्यक्ति के लिए अधिकार जन्मजात और वंशानुगत वरदान हैं। मानव को कुछ शाश्वत अधिकार प्राप्त हैं। उन्होंने अपना सामाजिक-आर्थिक संगठन का सिद्धांत इसी बात को दृष्टिगत रखकर प्रतिपादित किया कि व्यक्ति और उसके अधिकारों का क्या महत्व है। वे विश्वास रखते थे कि सरकार की संरचना इसलिए हुई है कि वह अन्याय, उत्पीड़न और अत्याचार का रोके। अधिकारों की रक्षा केवल कानूनों से ही नहीं हो सकती, किंतु समाज में नैतिक और सामाजिक चेतना की आवश्यकता है। यदि समाज में अधिकारों को पालन करने की भावना विद्यमान है तो अधिकार सुरक्षित रह सकते हैं। यदि समुदाय ही मौलिक अधिकारों का विरोध करता है तो कोई कानून, संसद या न्यायपालिका उनकी रक्षा नहीं कर सकती।[15] वे जनता और सरकार के बीच समरसता लाने की चेष्टा करते रहे।

अर्थशास्त्री

आम्बेडकर अर्थशास्त्र के लगनशील विद्यार्थी थे। एम० ए० के लिए उनका शोध प्रबंध थे ''एशियेंट इण्डियन कामर्स'' तथा एम० एस०सी० (लंदन) के लिए ''इवोलूशन ऑफ प्राविशियल फाइनैंस इन ब्रिटिश इण्डिया'' डी० एस० सी० के लिए 'द प्रोबलम आफ रूपी' भारत की मुद्रा समस्या के विषय में हिल्टन युवा आयोग के

---

12 आम्बेडकर—एनीहिलेशन आफ कास्ट

13 यथोपरि

14 यथोपरि

15 आम्बेडकर रानाडे गांधी एण्ड जिन्ना

सामने जो विचार प्रकट किए वे उनके भारत की मुद्रा समस्या के विषय में एक महत्वपूर्ण योगदान थे। उन्होंने अपने विचार जिन तत्कालीन भारतीय समस्याओं के संदर्भ में व्यक्त किए वे इस प्रकार हैं: भूमिहीन मजदूर, छोटे किसान, खेती प्रथा, महार वतन, सामूहिक खेती, भू-राजस्व और जमींदारी उन्मूलन। यह उनके चालीस वर्षों के दौरान 1917 से 1956 तक प्रकट किए गए विचारों की कहानी है। उन्होंने सभी प्रमुख राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं पर अपना मत व्यक्त किया। लेकिन उनकी दो उल्लेखनीय पुस्तकों 'इवोलूशन ऑफ प्रोविंशियल फाइनैंस इन ब्रिटिश इण्डिया'तथा 'प्रोबलम ऑफ रूपी' के साथ-साथ उन्होंने अपनी आर्थिक विचार धारा की व्याख्या इण्डिपेंडेंट लेबर पार्टी, तथा शेड्यूल्ड कास्ट्स फेडेरेशन के चुनाव घोषणा पत्रों और भारतीय संविधान पर बहस तथा बजटों पर बहस के दौरान की।

कई अवसरों पर आम्बेडकर ने भूमि, कृषिविधि और औद्योगीकरण के माध्यम पर अपने विचार व्यक्त किए। अछूत जातियों में ज्यादातर भूमिहीन या छोटे-मोटे किसान शामिल हैं। वे महसूस करते थे कि अछूत भूमिहीन मजदूरों की समस्या भारत की कृषि समस्या और उससे भी परे भारतीय अर्थव्यवस्था पर निर्भर है। इसलिए इनकी समस्या को राष्ट्रीय आर्थिक विकास के संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

आम्बेडकर सोचते थे कि यह ठीक नहीं कि जमीन पर लगान निर्धारण का आधार उसमें होने वाली आय रखा जाए। वे चाहते थे कि भूमि पर आयकर की तरह लगान लगना चाहिए। डा० जॉन मथाई की अध्यक्षता में गठित कराधान जांच आयोग ने भी बाद में यही राय दी थी। जमींदारी प्रथा, खोती, और महारवतन समाप्त किए जाने पर उन्होंने जो बल दिया, वह उल्लेखनीय है। उन्होंने इसे आर्थिक संघर्ष बल्कि शोषितों द्वारा शोषकों के विरुद्ध संघर्ष का नाम दिया।

अपनी पुस्तक 'द प्रोबलम ऑफ रूपी' में उन्होंने मुद्रा समस्या का विवेचन किया है। यह एक विवादास्पद विषय पर महत्वपूर्ण विश्लेषण है। डा० आम्बेडकर के अनुसार टकसाल बंद कर देने से मुद्रास्फीति तथा आंतरिक मूल्य असंतुलन दूर हो सकता है। वे समझते थे कि सोना मूल्य का मापदंड होना चाहिए और इसी के अनुसार मुद्रा में लचीलापन होना चाहिए। इस ग्रंथ में उन्होंने उत्कट विद्वत्ता तथा अथक परिश्रम का परिचय दिया है। रुपए के संबंध में यह ग्रंथ अब तक के सब ग्रंथों से बढ़कर था। उसके संबंध में पत्र पत्रिकाओं का मत इस प्रकार था।

'द टाइम्स' (लंदन) : अति श्रेष्ठ रचना है, अंग्रेजी की शैली सुगम है। अपने विषय में उनकी सम्पूर्ण पैठ है।

इकनोमिस्ट (लंदन) : सुस्पष्ट और सुयोग्यतापूर्ण लिखी गई पुस्तक है। अन्य अनेक रचनाओं में से या मुद्रा समस्या का कोई अन्य पहलू निश्चित रूप से इतना

पठनीय से नहीं है ... यह सुस्पष्ट और सुयोग्यतापूर्ण लिखी गई पुस्तक है।

स्कोट्समैन

"... इस रचना में अत्यधिक सावधानी बरती गई है और यह स्पष्ट है कि पुस्तक श्रमसाध्य शोध का परिणाम है ... मौलिकता की दृष्टि से यह पुस्तक भारतीय वित्त व्यवस्था के विद्यार्थियों की दृष्टि में प्रशंसनीय होगी।"

फाइनैनसियर

"आम्बेडकर ने इस समस्या को बड़ी प्रतिभापूर्ण शैली में प्रशंसनीय ढंग से लिखा है। उन्होंने न केवल इस समस्या की जड़ को ढूंढ निकाला है बल्कि इसके समाधान के लिए महत्वपूर्ण सुझाव भी प्रस्तुत किए हैं, इसका बैंकर्स और ऐसे व्यापारियों को अध्ययन करना चाहिए जिनका व्यवसाय विनिमय पर आधारित है।"[16]

विख्यात अर्थशास्त्री और उनके गाइड प्रो० एडविन कैनन ने भूमिका में लिखा है कि मैं उनकी कुछ आलाचनाओं से असहमत हूं परंतु "तब भी इन्हें बिल्कुल गलत समझने के बावजूद मैंने उनके विचारों में प्रेरक नवीनता अनुभव की। भारतीय मुद्रा समस्याओं के लेखकों ने इस पुस्तक के उद्धरण दिए हैं और यहां तक कि इसके अंशों को पाठ्य पुस्तकों में भी शामिल किया गया है।" डा० आम्बेडकर ने सोने की मुद्रा की वकालत की है और रुपए की अपरिवर्तनीय स्थिति का सुझाव दिया है।"

उनकी विचार शैली सुस्पष्ट एवं दलीलें ठोस एवं गहरी हैं। 'द इवोलूशन ऑफ प्रोविंशियल फाइनैंस इन ब्रिटिश इण्डिया' के बारे में आम्बेडकर के विचारों में राजकीय वित्त के प्रांतीय विकेन्द्रीकरण, (प्रोविंशियल डिसेंट्रलाइजेशन ऑफ इम्पीरियल फाइनैंस) पुस्तक की भूमिका में प्रोफेसर आर० ए० सैलिगमैन ने लिखा "इस संदर्भ में भी शामिल आम्बेडकर के योगदान का महत्व यह है कि उन्होंने तथ्यों का वस्तुपरक वर्णन किया है और अपने देश की रोचक गतिविधियों का निष्पक्ष विश्लेषण किया है। मेरे विचार में ऐसे सिद्धांतों का ऐसा विशद अध्ययन अत्यन्त दुर्लभ है।"

आम्बेडकर के अनुसार भारत की अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन का कारण भूमि प्रथा के परिवर्तनों में देरी है। इसका वास्तविक समाधान यह है कि लोकतांत्रिक

---

16 बम्बई विश्वविद्यालय आम्बेडकर संग्रह

17 टाइम्स आफ इण्डिया 11-2-48

सामूहिक व्यवस्था स्थापित की जाए जिसमें कार्यकुशलता, उत्पादकता और गांवों का कायाकल्प किया जाना चाहिए। इसका उद्देश्य आर्थिक शोषण और सामाजिक अन्याय को दूर करना है। उनका कहना था कि कोई जमींदार न रहे। वे स्वतंत्रता और कल्याण दोनों के ही हामी थे। वे अनुभव करते थे कि सहकारी खेती में भूमिहीन मजदूर को सही स्थान नहीं दिया गया है।

कृषि के राष्ट्रीयकरण के बारे में उनके विचारों का प्रतिक्रियावादी तत्वों ने विरोध किया। आर्थिक समस्याओं के संबंध में उनका मौलिक विचार यही था कि अतिवादी विचार अर्थहीन है जैसे वैज्ञानिक समाजवाद। इसलिए उनके विचार में मिश्रित अर्थव्यवस्था ही उत्तम है। वे प्रगतिशील सामाजिक परिवर्तन चाहते थे जिसमें सामाजिक और आर्थिक विषमताएं न हों।

आम्बेडकर समाजवाद के प्रगतिशील कदमों का समर्थन करते थे। वे सोचते थे कि समाजवाद के परिपालन से गरीबों की समस्याएं हल हो सकती हैं। उनके राजनीतिज्ञ होने की झलक उनके उद्भट अर्थशास्त्री होने में स्पष्ट परिलक्षित होती है। अपने राजनैतिक विचारों की परिपुष्टि के लिए ही उन्होंने आर्थिक विषयों पर प्रकाश डाला। राजनीति में अपना समग्र जीवन अर्पण कर देने से हमने उनमें एक प्रतिभावान अर्थशास्त्री खो दिया।[18]

समाजशास्त्री

आम्बेडकर ने आर्थिक और राजनैतिक विषयों पर लिखने के साथ-साथ सामाजिक समस्याओं पर भी लिखा है। जाति प्रथा पर उन्होंने अपना पहला लेख नृवंश शास्त्र गोष्ठी (9 मई 1910) में पढ़ा जिसका आयोजन डा० ए० ए० गोल्डनवीजर ने न्यूयार्क के कोलंबिया विश्वविद्यालय में किया था। उन्होंने 'भारत में जातियां' विषय पर लिखा जिसमें जातिप्रथा के व्यवहार और जन्म पर प्रकाश डाला गया था। उन्होंने शूद्रों और अछूतों पर दो पुस्तकें लिखीं। उनके साथ ही उन्होंने एक पुस्तिका "एनिहिलेशन ऑफ कास्ट विथ ए रिप्लाई टू महात्मा गांधी" लिखी (जात पांत तोड़क मण्डल, लाहौर में 1936 में आयोजित वार्षिक सम्मेलन में पढ़े जाने के लिए तैयार किया गया भाषण जो पढ़ा नहीं गया)।

आम्बेडकर ने शूद्रों के विषय में कहा है: (1) शूद्र आर्य ही थे जो सूर्यवंशी थे। (2) इण्डो आर्यन समाज में इन्हे क्षत्रीय वंश में गिना जाता था। (3) एक ऐसा काल भी था जब इण्डोआर्यन समाज में केवल 3 वर्ण हुआ करते थे। (4) शूद्र

18 एडब्ल्यू० एन० कुबेर आम्बेडकर, क्रिटीकल स्टडी

राजाओं और ब्राह्मणों के बीच परम्परागत कलह थी, जिसके कारण ब्राह्मणों पर अत्याचार किए गए और उनका अपमान किया गया। (5) परिणामस्वरूप ब्राह्मणों ने शूद्रों को जनेऊ से वंचित कर दिया। (6) जनेऊ से वंचित हो जाने पर शूद्रों का सामाजिक स्तर गिर गया, वे वैश्यों से भी नीचे आकर चौथा वर्ण बन गए।[19] अस्पृश्यता के बारे में वे कहते हैं कि सन् 200 ई० तक अस्पृश्यता नहीं थी। इसका प्रचलन 600 ई० से हुआ। गुप्त सम्राटों ने गोवध करने वाले को मृत्यु दण्ड का भागी बना दिया था। यह 400 ई० के आस-पास की बात है। अत: उनकी धारणा है कि सन् 400 ई० के आस-पास छुआछूत का प्रचलन हुआ। यह बौद्ध और ब्राह्मणों के संघर्ष का परिणाम था।[20]

आम्बेडकर ने जाति प्रथा के संबंध में सबसे सैद्धान्तिक विचार मार्च 1936 में लाहौर में आयोजित जात पांत तोड़क मण्डल के अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में व्यक्त किए। सम्मेलन मई 1936 तक स्थगित करना पड़ा क्योंकि इस बात की कटु आलोचना हुई थी कि आम्बेडकर जैसे नेता को उसका अध्यक्ष निर्वाचित किया गया था जो हिन्दूधर्म का द्वेषक था। इसका परिणाम यह निकला कि भाई परमानंद, डा० नारंग, महात्मा हंसराज और राजा नरेन्द्रनाथ जैसे नेताओं ने मण्डल से नाता तोड़ दिया। आम्बेडकर ने 13-14 अप्रैल 1936 में सिख सम्मेलन में भाग लिया। इससे मण्डल का संदेह और बढ़ गया। प्रस्तावित भाषण में उन्होंने कहा था कि हिन्दू होने के नाते मेरा यह अंतिम भाषण होगा। मण्डल ने ऐसे अध्यक्ष को अस्वीकार कर दिया। यह पहला अवसर था कि स्वागत समिति ने अध्यक्ष के विचारों से सहमति नहीं प्रकट की। इस बारे में गांधी जी ने टिप्पणी की कि "आम्बेडकर ऐसे व्यक्ति नहीं हैं जो अपने आपको क्षमा कर सकें।"[21]

आम्बेडकर के अनुसार जातियां स्वायत्त हैं, कोई भी ताकत किसी नए व्यक्ति को किसी जाति में शामिल नहीं करा सकती। हिन्दू समाज में धर्म परिवर्तन करके आने वालों के लिए कोई स्थान नहीं है। पुरातन पंथियों ने जाति के नाम पर सुधारकों को हतोत्साहित किया। वे समझते थे कि गुण और धर्म और नैतिकता सब जातियों के आधार पर गिनी जाती हैं। आदर्श समाज वही है जो स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व पर निर्भर है। यही लोकतंत्र का दूसरा नाम है। उनके अनुसार चातुर्वर्ण्य व्यवस्था कोई आदर्श नहीं है, यह सब पाखण्ड है। उन्होंने कहा कि चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के समान अन्य कोई समाज व्यवस्था गिरी हुई नहीं हो सकती। यही वह

19 आम्बेडकर—हू वर द शूद्राज ?

20 आम्बेडकर—अनटचेबल्स—हू आर दे ?

21 हरिजन 11-7-1936

व्यवस्था है जो मानव का विनाश करती है।[22] अन्तर्जातीय सहभोज कोई पक्का उपाय नहीं है। वास्तविक समाधान अन्तर्जातीय विवाह है।''[23] उन्होंने कहा कि जिन शास्त्रों में जाति विभाजन का जिक्र है, उन्हें नष्ट किया जाए।[24]

डा० आम्बेडकर के अध्यक्षीय भाषण के उत्तर में गांधी जी ने अपने हरिजन में तीन लेख लिखे। उन्होंने कहा 'डा० आम्बेडकर हिन्दू समाज के लिए एक चुनौती हैं।'[25] और आगे उन्होंने लिखा ''धर्म का विद्वता से कोई संबंध नहीं है,यह संत महात्माओं के अनुभवों और उपदेशों में मिलता है। जाति का इससे कोई नाता नहीं।''[26]उन्होंने कहा कि शास्त्रों की व्याख्या करना संतों का काम है, विद्वानों का नहीं। आम्बेडकर को इस पर एतराज था। वे कहते थे कि अभी तक किसी भी संत ने जाति प्रथा की निंदा नहीं की है। बल्कि वे तो घोर जाति समर्थक थे। इस संबंध में उन्होंने ज्ञानदेव और एकनाथ का जिक्र किया। उन्होंने कहा कि इन संतों ने जातिवाद या छुआछूत के विरुद्ध मोर्चा कभी नहीं बांधा। उन्होंने मानव और मानव के बीच सम्बंधों पर मौन रखा।[27]

सामाजिक समस्याओं पर अपने विश्लेषण में आम्बेडकर ने जातिप्रथा को मूर्खतापूर्ण और अत्याचार करने वाली व्यवस्था बताया और उन्होंने ब्राह्मणवाद की आलोचना की। उन्होंने ब्राह्मणवाद के सिद्धांतों की व्याख्या इस प्रकार की: (1) विभिन्न जातियों के बीच ऊंच-नीच, (2) शूद्रों और अछूतों का पूर्ण तिरस्कार, (3) शूद्रों और अछूतों को शिक्षा से पूर्णत: वंचित रखना, (4) शूद्र और अछूतों पर सत्ता और अधिकार के पद प्राप्त करने पर प्रतिबंध, (5) इन दोनों वर्गों पर सम्पति संचय का प्रतिबंध, (6) स्त्रियों की दासता और उत्पीड़न। उनके विचार से असमानता ब्राह्मणवाद का मान्य सिद्धांत है। उन्होंने कहा कि किसी भी अन्य समाज में ऐसा दर्शन तैयार करने पर मगजपच्ची नहीं की गई कि अशिक्षित ग्रामवासियों को भुलावे और गरीबी में रखने की स्थायी परम्परा चला दी गई हो जैसी ब्राह्मणवाद ने चलाई।[28]

आम्बेडकर ने कहा कि हिन्दुओं के समस्त धर्म ग्रंथों की रचना प्राय: ब्राह्मणों ने ही की है जिनका उद्देश्य अपनी महत्ता और सत्ता को बनाए रखना था। उनका कहना

22 आम्बेडकर—एनीहिलेशन आफ कास्ट,
23 यथोपरि
24 यथोपरि
25 हरिजन 11-7-1936
26 हरिजन 18-7-1936
27 आम्बेडकर—ए रिप्लाई टू महात्मा
28 आम्बेडकर—कांग्रेस एण्ड गांधी

था कि इन सब शास्त्रों को नष्ट किया जाए।[29] पुराण और शास्त्रों के बारे में वे कहते थे कि यह लोगों को बुद्धू बनाए रखने, बहकाने और सीधे सादे को लूटने का ढोंग है।[30] वे कहते थे कि पुजारियों के बारे में कानून बनाए जाने चाहिए। इससे ब्रह्मणवाद समाप्त हो जाएगा जो जातिवाद की जड़ है। आर्य समाजियों को इस बात का समर्थन करना चाहिए जिनका सिद्धांत गुणकर्म पर आधारित है।[31] उन्होंने बताया कि ब्रह्मणवाद और लोकतंत्र परस्पर विरोधी हैं। छुआछूत की जड़ तो जातपांत है और जातपांत का मूल है वर्णाश्रम जो ब्रह्मणवाद की देन है और ब्रह्मणवाद पनपा है अधिकारों और राजाश्रय से।[32]

अछूतों और शूद्रों की उत्पत्ति के बारे में उनके सिद्धांत विवादास्पद हैं। परंत इस सम्बंध में उनके प्रयत्न और पांडित्य सराहनीय हैं।

संविधान निर्माता

आम्बेडकर की इस बात के लिए प्रशंसा की गई कि उन्होंने निष्ठा और अत्यधिक परिश्रम के साथ संविधान सभा में स्वतंत्र भारत के संविधान को पारित कराया। कुछ लोगों ने विचार प्रकट किया कि पूना पैक्ट का एक भागीदार होने के नाते आम्बेडकर भारत के प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार दिए जाने की व्यवस्था से प्रसन्न थे। एक हरिजन सदस्य (मद्रास) ने इस बात पर गर्व अनुभव किया कि आम्बेडकर की योग्यता को न केवल हरिजनों ने बल्कि समाज के सभी वर्गों ने स्वीकार कर लिया है। उनकी विद्वत्तापूर्ण वक्तृताओं की अनेक लोगों ने प्रशंसा की है और शब्द इस विधि-विभूति के प्रति आभार प्रकट करने में समर्थ नहीं है।[33] यह कहा गया कि उन्होंने सभी का दिल जीत लिया है और ठाकुरदास भार्गव ने उनसे अनुरोध किया कि वे अपने आपको केवल अनुसूचित जातियों का नेता ही न समझे बल्कि कांग्रेस में शामिल होकर उसके हाईकमान में स्थान प्राप्त करें जो उनके संकुचित समुदाय के नेतृत्व से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।[34] एक हरिजन सदस्य एच० जे० खाण्डेकर इस बात से अत्यधिक प्रसन्न थे कि आम्बेडकर ने परिश्रम ही नहीं,

---

29 बम्बई प्रदेश दलित जाति सम्मेलन में अप्रैल 10-11, 1925 को डा० आम्बेडकर का भाषण

30 आम्बेडकर—रानाडे, गांधी एण्ड जिन्ना

31 आम्बेडकर—एनीहिलेशन आफ कास्ट

32 आम्बेडकर जयंती विशेषांक—कानपुर में 1944 का भाषण

33 केन्द्रीय सभा भाग 11

34 यथोपरि

बल्कि अथक परिश्रम किया है। पृथक् मतदान का विचार भी त्याग दिया और सलाहकार उप-समिति संयुक्त मतदान के पक्ष में वोट भी दिया।

अनेक सदस्यों ने आम्बेडकर को 'आधुनिक महापुरुष' बताया और उनके योगदान ने उनके सम्बंध में सारी भ्रांतियों और आशंकाओं को तिरोहित कर दिया। वे देश के सर्वोच्च राष्ट्र भक्तों के दल में गिने गए।[35] एस० सहाय ने कहा "स्वाधीनता का श्रेय महात्मा जी को दिया जाएगा और इसको संहिताबद्ध करने का सेहरा बंधेगा उनके कटुतम आलोचक के सिर अर्थात् हमारे महान् संविधान के महान शिल्पी डा० आम्बेडकर के सिर पर।" उन्होंने आगे कहा "उन्हें न केवल इस सदन से आभार का सौभाग्य प्राप्त है, वरन् पूरा राष्ट्र उनका आभारी है...जिस खूबी से उन्होंने विधेयक का संचालन किया वह न केवल इस संतति के लिए स्मरणीय है बल्कि आगे आने वाली पीढ़ियां भी उन्हें याद रखेगी।"[36] प्रारूप समिति के सदस्य अल्लादि कृष्णस्वामी अय्यर ने अपने भाषण का उपसंहार इस प्रकार किया—"यदि मैं सहयोगी माननीय डा० आम्बेडकर की कुशलता और योग्यता के प्रति सम्मान प्रकट नहीं करूंगा, तो मैं अपने कर्तव्य पालन से मुकरना समझूंगा। आम्बेडकर ने जिस योग्यता से इसका संचालन और जिस परिश्रम से इसकी संरचना की,वह प्रशंसनीय है।"[37] गोबिंद बल्लभ पंत ने उन्हें 'पण्डित' कहकर पुकारा और कहा "संविधान का प्रारूप तैयार करने में और उसकी व्यवस्थाओं की सदन में व्याख्या करने से उनकी विद्वत्ता का परिचय मिलता है।"[38] डा० पट्टाभि सीता रमैया ने कहा "इस विलक्षण और विशद कार्य में उन्होंने जिस विद्वत्ता का परिचय दिया है मैं उसकी ओर उनका ध्यान दिलाना चाहता हूं...जो उन्होंने उचित समझा वह कहा चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो।[39] पं० कुंजरू ने प्रारूप समिति की प्रशंसा की कि उसने इतनी कुशलता तथा सोच-विचार के साथ इस कार्य को सम्पन्न किया।[40]

डा० के० वी० राव का कथन था कि डा० आम्बेडकर संविधान के जनक नहीं, उसकी 'जननी' हैं। उनके अनुसार आम्बेडकर का इस सम्बंध में हुए निर्णयों में कोई हाथ नहीं था, वे इसकी नीतियों के भी निर्धारक नहीं थे, उन्हें अपने आपसे समझौता करना पड़ा, वे अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हुए बल्कि दूसरों की नीतियों की वकालत करनी पड़ी। उन्होंने राष्ट्रपति कार्यपालिका की पुष्टि की थी, किन्तु बाद में संविधान सभा में उन्हें स्वयं इस प्रणाली का विरोध करना पड़ा। डा० के० वी० राव ने आगे कहा कि नेहरू और पटेल को "राष्ट्र का पिता" कहा जा सकता है पर मैं उन्हें प्रमुख देवता कहना पसंद करूंगा जो संविधान के वास्तविक जनक थे। आम्बेडकर को संविधान की जननी कहा जा सकता है।[41]

35, 36, 37, 38, 39, 40, यथोपरि

41 के० वी० राव—पार्लियामैंटरी डेमोक्रेसी आफ इंडिया

डा० पीली ने अपनी पुस्तक में उन्हें संविधानवेत्ता के रूप में इस प्रकार देखा "आम्बेडकर ने अपना कार्य श्रेष्ठता, पांडित्य, विद्वत्ता, कल्पना शक्ति, तर्क और अनुभवों के आधार पर किया।" प्रारूप की व्यवस्थाओं पर आलोचनाओ का उत्तर देने के लिए जब भी वे खड़े हुए तभी उन व्यवस्थाओं की ऐसी ठोस और स्पष्ट व्याख्या उन्होंने की कि मानों भ्रांतियों की घटा छंट गई हो। दर असल वे आधुनिक मनु थे और भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पी कहलाने के अधिकारी थे।[42]

जॉन ड्यूवी से प्रेरणा

जातियों के बारे में अपने प्रबंध में डा० आम्बेडकर ने अपने अध्यापक जॉन ड्यूवी का जिक्र किया जिनके प्रति वे आभार प्रकट करते रहे हैं। भारत के लगभग सभी विचारक और नेता इंग्लैंड की उदार विचारधारा से प्रभावित थे, लेकिन डा० आम्बेडकर ही मात्र ऐसे नेता थे जिनका प्रेरणा स्रोत अमरीका था। उन्होंने अपने को जॉन ड्यूवी का ऋणी बताया है। जॉन ड्यूवी का दर्शन यथार्थवाद पर टिका है। वे परिणाम को महत्व देते हैं, सिद्धांत को नहीं। वास्तविकता अनुभवों से ही प्रकाश में आती है। यह आशावादी दर्शन है।

एक मूल्यांकन

आम्बेडकर एक विख्यात विद्वान, विशिष्ट शिक्षाविद्, पारंगत राजनेता, प्रभावशाली वक्ता, साहसी त्राता, प्रामाणिक संविधानवेत्ता, योग्य प्रशासक, क्रांतिकारी परिवर्तनों के प्रसिद्ध पक्षधर और दलितों के निर्भीक हिमायती थे। आम्बेडकर के स्वभाव में संस्कृति, विवेक, व्यंग्य, मानवता, तर्कशक्ति, बुद्धिवाद, असमानता के विरुद्ध विक्षोभ, और अन्याय तथा अंधविश्वास के प्रति रोष का सही संतुलन था। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। गांधी जी उन्हें झगड़ालू और निडर कहा करते थे।

डा० आम्बेडकर ने धार्मिक ग्रंथों के उन अंशों को उद्धृत किया जिनसे समाज के उच्च शिखर पर बैठे लोगों ने ऐसा कुचक्र चलाया कि भेदभाव हमारे धर्म का अंग बन गया और उससे समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को शोषण के गर्त में ढकेल दिया गया।

उन्होंने कहा था कि राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम से भी महत्वपूर्ण अछूतों की सामाजिक स्वाधीनता है। गांधी जी ने कहा था कि उस समय तक स्वराज्य व्यर्थ है

42 एम० वी० पैली, कास्टीटयूशनल गर्वनमैंट आफ इण्डिया

जब तक अस्पृश्यता का कलंक हमारे माथे से नहीं हटता। फिर राष्ट्रीय आंदोलन भी इसी आधार पर चला।

डा० आम्बेडकर ने अछूतों को संगठित किया। उन्हें मनुष्यों का दर्जा दिलाया और भारतीय समाज तथा राजनीति में स्थान दिलाया। उनके नेतृत्व के फलस्वरूप एक शिक्षित वर्ग पैदा हुआ और सरकारी सेवाओं में लगा हालांकि इसकी सीमाएं हैं। उनके विचार में लोकतंत्र में अछूतों का राजनैतिक शत्रु ब्राह्मण नहीं है, (हालांकि वह ब्राह्मण विरोधी थे) बल्कि शक्तिशाली कृषक जातियां हैं। उन्होंने महारवतन समाप्त किए जाने पर जोर दिया और जमींदारी प्रथा तोड़ने की चेष्टा की।

डा० आम्बेडकर की जो स्मृतियां शेष हैं उनमें तीन संस्थाएं बहुत महत्वपूर्ण है (1) पीपुल्स एजूकेशन सोसायटी 1945 और उसके कालेज (2) बुद्धिस्ट सोसायटी ऑफ इण्डिया 1953 और रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया (उनके सिद्धांतों पर उनके निधन के उपरांत बनी)। उन्होंने अनुभव किया कि सुरक्षित स्थानों को समाप्त किया जाए। पहले आम चुनावों में उन्होंने शि० का० फे० और सोशलिस्टों के साथ समझौता कराया लेकिन सोशलिस्टों ने शि० का० फे० के उम्मीदवारों को वोट नहीं दिए। उनके राजनैतिक दल की आस्था अपनी जाति तक ही सीमित थी। क्रिप्स के सामने उन्होंने कहा था कि मैं मजदूर नेता होने की अपेक्षा अपने समुदाय का नेता होना पसंद करूंगा। वे प्रत्येक व्यक्ति का मूल्यांकन इस बात से करते थे कि परिगणित जातियों के लिए उसने क्या किया है।

उन्होंने केन्द्रीकृत सरकार की स्थापना के लिए संघर्ष किया जो कि भारतीय लोकतंत्र के लिए आवश्यक थी। उन्होंने संविधान सभा में संविधान के प्रारूप को पास कराने के लिए विलक्षण क्षमता दिखाई। पर बाद की कुछ घटनाओं से वे कुंठित हो उठे और उन्हें कहना पड़ा कि "संविधान तैयार करते समय मैं भाड़े का टट्टू था।"[43] 1952 के आम चुनावों में उनकी सम्पूर्ण पराजय से उन्हें बहुत निराशा हुई। आम धारणा यह बनी कि "आम्बेडकर का कोई खास राजनैतिक प्रभाव नहीं है परंतु उनके विचारों का सम्मान किया जाता रहा।"[44] इस सवाल का जवाब आज तक नहीं मिलता कि उन्होंने अपने आपको एक सम्प्रदाय का नेता क्यों कहा, श्रमिक नेता क्यों नहीं कहा? आम्बेडकर का स्वभाव उदारवादी था। उन्होंने संसदीय लोकतंत्र और राज्य समाजवाद पर बल दिया।

आम्बेडकर ने प्रमाणित कर दिया कि वे एक निर्भीक बुद्धिवादी होने के साथ साथ एक महान् राजनीतिज्ञ भी थे।

---

43 टाइम्स आफ इण्डिया 3-7-1954

44 टाइम्स आफ इण्डिया 4-5-1956

उन्होंने भारतीय राजनीति को संकीर्णता, परम्परावाद एवं धर्मवाद से मुक्त कराने की चेष्टा की। उन्होंने देश को वैधानिक ढांचा प्रदान किया और लोगों को स्वतंत्रता का आधार प्रदान किया। भारत में ब्रिटिश शासन के अंतिम दौर में, जब भारत प्रभुता सम्पन्न गणराज्य बनने जा रहा था उस समय के देश के सामाजिक-राजनैतिक इतिहास और संविधान के विकास में उन का नाम प्रमुखता से लिया जाएगा। भारतीय राजनीति के इतिहास में एक राजनीतिज्ञ के रूप में उनकी भूमिका और बौद्धिक योगदान सदा अमर रहेगा।[45] उन्होंने महत्वपूर्ण राजनैतिक फैसलों में हाथ बंटाया और उनकी रचनात्मक राजनीतिमत्ता संविधान रचना के दौरान स्वतः प्रस्फुटित हुई।[46]

आम्बेडकर ने भाऊराव गायकवाड़ से कहा कि वे महारवतन बिल के संबंध में अपना संघर्ष स्थगित कर दें क्योंकि वे सोचते थे कि इससे सवर्णलोग रुष्ट हो सकते हैं। उन्होंने कहा कि इस संघर्ष में महारों के हितों को नुकसान पहुंचेगा। उन्होंने सोचा कि बेकार जेल भरने से कोई लाभ नहीं। उन्होंने अपने अनुयाइयों से कहा कि वे सत्याग्रह का मार्ग त्याग दें। उन्होंने कहा कि सरकार के सामने अछूतों की मांग प्रस्तुत की जाए और इस आंदोलन को सामूहिक सत्याग्रह का रूप न दिया जाए।[47] वे सोचते थे कि विधि सम्मत शासन में न केवल क्रांति के खूनी तरीके निकृष्ट हैं बल्कि सविनय अवज्ञा, असहयोग और सत्याग्रह भी अवांछनीय हैं। यद्यपि आम्बेडकर ने पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की थी किंतु वे नेहरू के समान पश्चिम परस्त नहीं थे। उन्होंने घोषणा की कि अछूतों के दो शत्रु हैं: ब्राह्मण और पूंजीवाद, पर इनसे लड़ने का उनका तरीका क्या था। न केवल संसदीय साधनों को अपनाकर बल्कि अन्य समान विचार वाले दलों के सहयोग से वर्ग युद्ध छेड़ना। उनकी राजनीतिक विचारधारा की यही सबसे बड़ी कमजोरी थी।

डा० जाटव ने आम्बेडकर के विचारों को सामाजिक मानवतावाद बताया इनमें निम्नांकित सिद्धांत थे—(1) मानव जाति में समानता, (2) प्रत्येक मानव एक इकाई के रूप में (3) प्रत्येक मानव को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (4) प्रत्येक मानव को अभावों और भय से मुक्ति दिलाना, (5) स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व और मानव का मानव द्वारा, वर्ग का वर्ग द्वारा तथा राष्ट्र का राष्ट्र द्वारा अत्याचार एवं शोषण बंद करना, (6) संसदीय प्रणाली पर आधारित शासन के अन्तर्गत लोकतांत्रिक समाज की स्थापना, (7) सामाजिक सुधार में अहिंसा का मार्ग और वर्णसंघर्ष या गृहयुद्ध से बचने के लिए समझाने-बुझाने का तरीका, (8) किसी भी 'वाद' सिद्धांत का विश्वास की अति से बचना, (9) आध्यात्मिक अनुशासन की आवश्यकता और

45 राजशेखरैया—द पोलिटिक्स आफ इमेन्सीपेशन

46 यथोपरि 47 लेटर्स टू गायकवाड़

(10) विश्व प्रेम, समानता और भ्रातृत्व की स्थापना, जिसका उपदेश बुद्ध ने दिया।[48]

आम्बेडकर की राजनैतिक विचारधारा के सिद्धांत इस प्रकार हैं : राष्ट्रीयता की व्यावहारिक शक्तियों को मान्यता, स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के आधार पर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक मुक्ति के लिए धर्म युद्ध, किसी प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक या धार्मिक साम्राज्यवाद का विरोध, मात्र संवैधानिक तरीकों का उपयोग, हिंसा का त्याग, न्याय और शांति प्रेम, लोकतांत्रिक गत्यात्मकता की ओर झुकाव, मानवतावाद जिसके अनुसार मानव सभ्यता और संस्कृति का निर्माता माना जाता है और प्रेम एवं ज्ञान के आधार पर प्रगति की क्षमता रखने वाला समझा जाता है।[49]

बाद में आम्बेडकर द्वारा पृथक मतदान की मांग त्यागना और राष्ट्रीय नेतृत्व के साथ समझौता करना महत्वपूर्ण बातें थीं। यदि इसका पहले से अनुसरण किया होता तो पूरा राष्ट्रीय आंदोलन ही कुछ और होता। उनका मार्क्सवाद के प्रति विरोध और बौद्ध धर्म में दीक्षा लेना प्रतिक्रियावादी कदम थे। उनके पास कोई वर्ग कार्यक्रम नहीं था। "इस का पता नहीं चलता कि मार्क्सवाद का तिरस्कार करके और बौद्ध धर्म को उसका विकल्प बनाकर वे किस प्रकार समाजवाद ला सकते थे।" इस प्रकार उन्होंने मजदूरों और किसानों के सम्पूर्ण आंदोलन को प्रतिक्रियावादी और तात्विक विचारों की ओर मोड़ दिया।[50] दलित जातियों और शोषितों के नेतृत्व के प्रश्न पर बिलगाव की भावना बढ़ी। एक पक्ष द्वारा सामाजिक उद्धार और दूसरे द्वारा राजनैतिक उद्देश्य को चलने से जो द्विभागीकरण हुआ उनके बीच का अंतर समाप्त होना चाहिए था।

डा० आम्बेडकर के नेतृत्व वाले लोगों ने संस्कृतिकरण की अपेक्षा पाश्चात्यीकरण का मार्ग अपनाया। आंतरिक जातीय सुधार, जातिवर्ग के भीतर ही नेतृत्व पर जोर, राजनीतिक मांगें, पौराणिक धर्म की अस्वीकृति आदि ने उनके इस आंदोलन को एक निश्चित दिशा प्रदान की। पृथकतावादी तत्व पहले भी विद्यमान थे और अब भी हैं किंतु एकतावादी तत्वों की सहायता से उन्हें नियंत्रित किया जा सकता है।

स्वाधीन भारत के भावी संविधान में अछूतों की सुरक्षा के लिए राजनैतिक संरक्षण के सम्बंध में उन्होंने गोलमेज सम्मेलन में एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया था। उन्होंने मांग की थी : (1) समान नागरिकता और अस्पृश्यता को गैर-कानूनी मानते

48 डी० आर० जाटव सोशल फिलोसफी आफ डा० आम्बेडकर

49 डी० आर० जाटव द पोलिटीकल थियोरी आफ डा० आम्बेडकर

50 डा० डब्ल्यू एन कुबेर,—डा० आम्बेडकर ए क्रिटीकल स्टडी

हुए मूल अधिकार, (2) समानता के अधिकारों का मुक्त उपयोग जिसके लिए समुचित संवैधानिक व्यवस्था हो, (3) भेदभाव के विरुद्ध संरक्षण, (4) अनुसूचित जातियों को विधायिकाओं में यथोचित प्रतिनिधित्व, दस वर्ष तक इन वर्गों के लिए पृथक मतदान और वयस्क मताधिकार, (5) सेवाओं में समुचित प्रतिनिधित्व, (6) दुराग्रह तथा अवहेलना से संरक्षण, शिक्षा सुविधाए आदि, (7) विशेष विभागीय देखभाल, विशेष मंत्री और कल्याण ब्यूरो, और (8) भावी मंत्रिमण्डल में स्थान। यदि हम उपरोक्त मांगों का विवेचन करें तो हम पाएंगे कि सब पर अमल हो रहा है जिसका श्रेय आम्बेडकर और भारतीय राष्ट्रीयता की प्रगतिशील प्रजातांत्रिक प्रकृति को है। मूल अधिकारों के सम्बंध में कराची कांग्रेस अधिवेशन में अप्रैल 1931 में प्रस्ताव पास किया गया था। गांधी जी ने अपने राष्ट्रीय आंदोलन में अस्पृश्यता निवारण कार्यक्रम को शामिल किया। उन्होंने 1920 में कहा "इस कलंक को धोए बिना स्वराज्य निरर्थक है।"

भारत में सामाजिक आदर्शवाद एवं राजनैतिक आदर्शवाद एक दूसरे के विरोधी रहे हैं। आम्बेडकर समझते थे कि बहुमत का राजनैतिक आदर्शवाद सभी का सामाजिक आदर्शवाद बन जाएगा। उनके अखिल भारतीय नेतृत्व में उनके अपने सम्प्रदाय के प्रति उनकी आस्था प्रकट होती है। उन्होंने अपने वर्ग की स्वतंत्रता एवं कल्याण को स्वराज्य से भी अधिक महत्व दिया। परंतु जब स्वराज्य की प्रगति निकट आई तो उन्होंने राष्ट्रीय नेतृत्व से समझौता कर लिया। राजनीति में उनका प्रभुत्व तो नहीं जमा किंतु उन्होंने महत्वपूर्ण निर्णयों को नवीन दिशा प्रदान की यद्यपि वे अपने समुदाय के नेता थे तथापि उन्होंने भारतीय राजनीति को धर्म निरपेक्ष बनाने की चेष्टा की। भारतीय राजनीति को धर्म निरपेक्षता की ओर अग्रसर करने वाले तत्व थे : पश्चिम का प्रभाव, कानून का शासन, नागरिकों में समानता, विधि रचना और नीति निर्णयों में राजनीतिज्ञों का सहयोग, राजा राम मोहन राय, रानडे, फुले, आगरकर तथा अन्य समाज सुधारकों के व्यापक आंदोलन, प्रजातांत्रिक उदारता और बालिग मताधिकार। भारतीय संविधान की भूमिका इसका अभूतपूर्व उदाहरण है। डा० आम्बेडकर भी उक्त विचारधारा के एक परिपोषक थे।

राष्ट्रीय अखण्डता एक ज्वलंत समस्या थी। शिक्षा, आर्थिक विकास, तर्क संगत दृष्टिकोण, आधुनिक विज्ञान और टैक्नोलाजी, सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रमों का धर्म निरपेक्ष स्वरूप और संवैधानिक उद्देश्य कुछ ऐसे तत्व थे जिन्होंने राष्ट्रीय एकता की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया। भारतीय राष्ट्रीय जीवन को उन्होंने नवजीवन प्रदान किया। राष्ट्र निर्माताओं की शृंखला में डा० आम्बेडकर को स्थान दिलाने में उनकी रचनात्मक राजनीतिमत्ता का बहुत सहयोग है।

भारत का सपना

साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीयता

आम्बेडकर के अनुसार मानवता के इतिहास में राष्ट्रीयता एक बहुत बड़ी शक्ति रही है। यह एकत्व की भावना है। किसी विशेष वर्ग से संबंधित होना नहीं। यही राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय भावना का सार कहा जाता है।[1]

आम्बेडकर का राष्ट्रवाद कुछ भिन्न उद्देश्यों के साथ शुरू हुआ अर्थात् दलितों और निर्धनों का उद्धार करना था। उन्होंने उन लोगों के लिए समानता तथा नागरिक अधिकार दिलाने का संघर्ष किया जो सदियों से इनसे वंचित थे। उनमें राष्ट्रीयता की भावना, विदेशी प्रभुत्व तथा आंतरिक उत्पीड़न दोनों के ही विरुद्ध पनपी। देश और उनके निवासियों दोनों के प्रति उनके गर्व और गरिमा के माध्यम से ही उनमें राष्ट्रीय भावना जाग्रत हुई। उन्होंने देश की स्वतंत्रता और उस देश के लोगों की वैयक्तिक स्वतंत्रता में अन्तर की स्पष्ट व्याख्या की। वे अनुभव करते थे कि जब जन-जन की वैयक्तिक स्वतंत्रता सुनिश्चित नहीं की जाएगी तो राष्ट्रीयता का अर्थ होगा आंतरिक दासता, जबरन मजदूरी और गरीबों पर नियोजित अत्याचार। उनकी दृष्टि में सही राष्ट्रवाद है जाति भावना का परित्याग और जाति भावना गहन साम्प्रदायिकता का ही रूप है। उन्होंने कहा कि राष्ट्रवाद तभी औचित्य ग्रहण कर सकता है जब मानव के बीच जाति, नस्ल या रंग का अन्तर भुलाकर उसमें सामाजिक भ्रातृत्व को सर्वोच्च स्थान दिया जाए। राष्ट्रवाद के संदर्भ में उन्होंने अल्पमत और बहुमत के विषय में कहा है, ''अल्पमत द्वारा जब सत्ता में कुछ अधिकार मांगे जाते हैं तो वह साम्प्रदायिक हो जाता है परन्तु जब बहुमत के बल पर सत्ता पर एकाधिकार जमा लिया जाता है उसे राष्ट्रीयता कहा जाता है।''[2] राष्ट्रीयता के सम्बंध में उनके विचार केवल गुलाम देशों की मुक्ति तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि वे व्यक्ति तक की स्वतंत्रता चाहते थे और स्वतंत्र देशों के परवश लोगों की आजादी के भी हामी थे।

1 पाकिस्तान और पार्टीशन आफ इण्डिया,

2 आम्बेडकर—स्टेटस एण्ड माइनोरिटीज

देश की संविधान सभा में राजनीति में लिप्त लोगों ने 'भारत के लोग' शब्द पर आपत्ति की। वे इसके स्थान पर "भारत राष्ट्र" लिखे जाने के पक्ष में थे। आम्बेडकर ने पूछा: "हजारों जातियों में बंटे लोग एक राष्ट्र कैसे हो सकते हैं?" उन्होंने कहा कि जितनी जल्दी हम यह समझ जाएंगे कि सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अभी हम एक राष्ट्र नहीं हैं, उतना ही अच्छा है।[3]

आम्बेडकर ने दलित जातियों के हितों और उनकी स्वाधीनता को राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के साथ जोड़ दिया था। उन्होंने कहा, "यह केवल स्वराज्य संविधान में ही व्यवस्था है कि आपको अपने हाथ में ही राजनीतिक सत्ता प्राप्त होने का अवसर मिल रहा है, जिसके बिना तुम अपने लोगों का उद्धार नहीं कर सकते।"[4] लेकिन यह साम्राज्यवाद-विरोधी भावना दलित जातियों में सर्वदा विद्यमान न थी।

संविधान के प्रवर्तन के समय आम्बेडकर ने स्पष्ट किया, भारत में राजनैतिक समानता की व्यवस्था तो हो गई है परन्तु अभी सामाजिक और आर्थिक जीवन में बिषमताएं शेष हैं। उन्होंने कहा कि "इस विसंगति को शीघ्रातिशीघ्र दूर किया जाए। या फिर वे लोग जो सताए हुए हैं, राजनैतिक लोकतंत्र की धज्जियां उड़ा देंगे जिसे इस संविधान सभा ने बड़ी मेहनत से तैयार किया है।"[5] आम्बेडकर का कहना था कि अस्पृश्यता निवारण की समस्या भारतीय समाज की सामाजिक-आर्थिक पुनर्गठन की समस्या है। अस्पृश्यता निवारण आंदोलन भारतीय जनता में व्यापक राष्ट्रीय और मानवीय चेतना की जागृति का प्रतीक है। अछूतों मे ही अधिकांश भूमिहीन मजदूर, अर्धदास या निकृष्ट धंधों में लगे हुए लोग हैं। उन पर दुहरा आघात होता है : आर्थिक तथा सामाजिक। उनकी सामाजिक दशा ने उनका आर्थिक शोषण कराया और उनकी आर्थिक हीनता ने उनके सामाजिक पतन को दृढ़ बनाने में मदद की।

जब आम्बेडकर जनता की मांग उठा रहे थे, और जन आंदोलनों का नेतृत्व कर रहे थे, तो एक नेता होने के नाते अपने अनुयायियों मे भी आगे गए। इस बात का पता चलता है 1938 में बम्बई में कांग्रेस द्वारा प्रस्तुत हड़ताल विरोधी बिल के विरुद्ध प्रदर्शन में उनके भाग लेने से। उन्होंने कम्युनिस्टों तथा अन्य मजदूर संघों के साथ सहयोग किया और एक सफल हड़ताल कराई। परन्तु जब जन आंदोलनों ने उनका अनुसरण नहीं किया तो वह अकेले पड़ गए और सरकार समर्थक बन गए तथा उनमें साम्प्रदायिक भावना बलवती हो गई।

---

3 केन्द्रीय सभा बहस भाग 7,

4 आर० पी० दत्त—इण्डिया टूडे

5 केन्द्रीय सभा बहस भाग-11

आम्बेडकर ने जिस प्रकार कांग्रेस और गांधी की आलोचना की, स्वतन्त्रता संग्राम के विरुद्ध जो भी बात कही स्वभावतः उनके कारण आम्बेडकर के प्रति लोगों की भावनाएं भड़क उठीं। बहुत से नेता इसीलिए आम्बेडकर पर बरस पड़े और उन्हें राष्ट्रद्रोही तथा ब्रिटिश भक्त तक कह डाला। के० संथानम ने कहा—"वायसराय की कौंसिल में खाली स्थान भरने के लिए जब कांग्रेस का विरोध करना एक गुण बन गया तो शायद आम्बेडकर को उम समय यह पद प्राप्त हो गया जब कि उस समय 1942 का महान आंदोलन शुरू होने वाला था। आम्बेडकर ने अपनी पुस्तक "कांग्रेस एण्ड गांधी" 1945 ई० में लिखी जबकि वे वायसराय की कौंसिल के सदस्य थे। के० संथानम ने उन पर आक्षेप किया और कहा कि उनका महत्व इसी कारण बढ़ा क्योंकि उन्होंने कांग्रेस के प्रति शत्रुता का भाव प्रदर्शित किया।[6] राजाजी ने आम्बेडकर पर दोषारोपण किया कि वह दलित जातियों को कांग्रेस आंदोलन से अलग कर रहे हैं।[7]

अमरीका में आम्बेडकर का लाला लाजपतराय से सम्पर्क हुआ जिन्हें निर्वासित कर दिया गया था। जब लाला जी को पता चला कि आम्बेडकर अछूत जाति के हैं तो उन्होंने उनका मन जीतने का प्रयत्न किया और उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल करने के लिए मनाया। लालाजी आम्बेडकर का मन न जीत सके। आम्बेडकर कहा करते थी : तुमने अछूतों को दास बनाया है और तुम अपनी राजनैतिक स्वतंत्रता चाहते हो, इसी कारण अछूत राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल नहीं होंगे।"[8]

आम्बेडकर ने कहा कि शासक जातियां यह बात जानती हैं कि वर्ग मिद्धांत, वर्ग हित, और वर्ग संघर्ष उनका विनाश कर देगा। ये जानती हैं कि सताए हुए वर्ग का ध्यान बंटाने के लिए उसे राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय एकता का नाम लेकर बहका दिया जाए। वे समझते थे कि कांग्रेस एक ऐमा मंच है जो शासक जातियों के हितों की रक्षा करता है।

आम्बेडकर के अनुमार राष्ट्र के मन्दर्भ में राष्ट्रीयता का अर्थ होना चाहिए सामाजिक एकता की दृढ़ भावना, अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ में इसका आधार भाईचारा। उन्होंने कहा कि ऐसा राष्ट्रवाद नहीं होना चाहिए जो दूसरे राष्ट्र या समुदाय के प्रति निर्दयता अथवा जिससे भय प्रमाणित हो। उन्होंने कहा कि उस समय तक राष्ट्रवाद निरर्थक है जब तक राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान न हो।[9] उन्होंने कहा कि सवर्ण

6 के० संथानम—आम्बेडकर रिफ्यूटिड,

7 राजगोपालाचारी—आम्बेडकर्स अटैक,

8 खेरमोडे, लाइफ आफ आम्बेडकर (मराठी) भाग एक,

9 आम्बेडकर, पाकिस्तान

हिन्दू जातियां राष्ट्रवाद के नाम पर निम्न जातियों को धोखा दे सकती हैं। राष्ट्रीय आंदोलन का परिणाम बंगाल का विभाजन निकला और इसके सरकार विरोधी स्वरूप को आम्बेडकर ने उच्च जातियों की चालाकी बताया।[10]

समाज सुधार

उन्होंने अपनी पुस्तक 'हू वर शूद्राज' महात्मा फुले को समर्पित की। फुले के समर्थक ब्राह्मणों को 'राष्ट्र का शत्रु' समझते थे। कौल्हापुर के साहू महाराज का अनुमान था कि आम्बेडकर ब्राह्मण-विरोधी अभियान चलाने के लिए एक उदीयमान युवक साबित हो सकते हैं। उन्होंने उनसे कहा कि वे लंदन में मैसर्स लिटिल एण्ड कम्पनी से सलाह लें कि क्या तिलक के इस बयान पर उनके विरुद्ध मुकदमा चलाया जा सकता है कि महार एक अपराधी जाति है।[11] एक अन्य पत्र में महाराजा ने लिखा "भारत के लिए स्वराज्य की वर्तमान योजना (1919) मे जनता.स्वाधीन और समान न रहेगी बल्कि ब्राह्मणों का प्रभुत्व बढ़ जाएगा। मुट्ठी भर ब्राह्मणों के हाथ में सत्ता आ जाना साम्राज्य के लिए खतरा होगा।"[12] अंत में उन्होंने आशा व्यक्त की कि गैर-ब्राह्मणों की बात ब्रिटिश सरकार सहानुभूतिपूर्वक सुनेगी। गैर-ब्राह्मण आंदोलन ने ब्रिटिश सरकार से संरक्षण और मार्गदर्शन मांगा[13] जब तक कि जाति प्रथा का समूल विनाश नहीं होता।

इन सब बातों का आम्बेडकर पर कोई प्रभाव नही पड़ा। आम्बेडकर ने इस आंदोलन की विफलता के कारणों का कई बार विश्लेषण किया। उन्होंने कहा कि गैर-ब्राह्मण दलों ने अपने लोगों को अपनी सत्ता के आधार पर पद दिलाने के सिवाय और कुछ नहीं किया। गैर-ब्राह्मण दलों ने उस वर्ग को भुला दिया जहां से वे निकले थे। उन्होंने इस बात की आलोचना की कि अनेक गैर-ब्राह्मण लोगों ने दूसरे दर्जे का ब्राह्मण बनने की कोशिश की, उन्होंने ब्राह्मणवाद को तिलांजलि नहीं दी।[14] गैर-ब्राह्मणों ने फुले के विचारों को नहीं अपनाया। 1916 में जातिवाद बड़ा तीव्र हो उठा था जब मोंटेग्यू यह पता लगाने आए कि भारत की जनता किस प्रकार का शासन

---

10 यथोपरि

11 बम्बई विश्वविद्यालय आम्बेडकर संग्रह

12 यथोपरि

13 जी० एस० घुर्ये,कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया

14 कीर, ऊपरलिखित

चाहती है।[15] उनके विचार मे इस आंदोलन का लाभ सबसे ज्यादा भूपतियों को मिला।[16] यद्यपि उन्होंने ब्राह्मणवाद का विरोध किया तथापि वे ब्राह्मण विरोधी नहीं थे।

आम्बेडकर के अनुसार गैर-ब्राह्मण नेताओं का इस उद्देश्य के प्रति कोई लगाव नहीं था, वे गैर-ब्राह्मण जातियों को भी एक समान स्तर पर न ला सके। मराठों ने अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन शुरू कर दिया और मराठों तथा गैर-मराठों का भेद हर कार्यक्रम में स्पष्ट झलकने लगा। यहां तक कि गैर-ब्राह्मण शैक्षिक सम्मेलनों में भी छूत के भय से अछूतों को दूर बैठाया जाता था। बी०टी० जाधव जैसे गैर-ब्राह्मण नेताओं ने आम चुनावों में मराठों से अपील की कि वे केवल अपनी जाति के उम्मीदवारों को ही वोट दें। इस आंदोलन में अछूत वर्ग का कोई स्थान नहीं था। यही कारण था कि अछूतों को गैर-ब्राह्मणवादी आंदोलन से आकर्षित होने के बावजूद इसमे एकाकार न हो सका।[17] बम्बई धारा सभा में गैर-ब्राह्मण सदस्यों ने छुआछूत निवारक विधेयक का विरोध किया। उच्च जातीय मराठों ने आम्बेडकर के महाद तालाब सत्याग्रह का समर्थन नहीं किया। उन्होंने कहा कि मराठे प्रगतिशील नहीं हैं क्योंकि उन्होंने महारवतन बिल का समर्थन नहीं किया।[18] आम्बेडकर ने कहा कि मराठों में कोई तिलक, गोखले या रानडे जैसा प्रतिभावान नेता नहीं हुआ।[19] सत्यशोधक समाज के 16वें अधिवेशन पर प्रकाशित पत्रिका में उन्होंने लिखा—गैर-ब्राह्मणों ने ज्योतिबा फुले की याद दफना दी है। न केवल इतना ही बल्कि यह जाति उनके दर्शन से भी विश्वासघात कर रही है।[20] जब तक गैर-ब्राह्मणवाद ने अछूतों और खासतौर से आम्बेडकर को उठाया वह एक प्रगतिशील तथ्य रहा, परन्तु इसके नेताओं ने आंदोलन से अपने वर्ग को लाभ पहुंचाया और अछूतों को दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका।

हालांकि आम्बेडकर फुले से प्रभावित थे परन्तु साम्प्रदायिक और असामाजिक ढंग से आंदोलन चलाने वाले उनके तथाकथित अनुयायियों से आम्बेडकर को निराशा ही मिली।

---

15 एम० एन० श्रीनिवास, कास्ट इन मार्डन इण्डिया एण्ड अदर एस्सेज,

16 खैरमोडे भाग दो

17 खैरमोडे भाग दो

18 यथोपरि

19 आम्बेडकर पाकिस्तान

20 सत्यशोधक दिसम्बर 1950

सारसंक्षेप

आम्बेडकर की रचनाओं के यहां कुछ संक्षिप्त उद्धरण प्रस्तुत हैं। इनसे विभिन्न विषयों पर उनके विचारों का परिचय मिलता है।

"... यदि प्लेटो द्वारा की गई दास की परिभाषा को स्वीकार कर लिया जाए, जो कहता है कि वह व्यक्ति दास है जो अपने व्यवहार के लिए अन्य व्यक्ति से आदेश पाता है, तो अछूत वास्तविक दास हैं। अछूतों की सामाजिक स्थिति यह है कि वे अपनी हीन स्थिति के प्रति कभी शिकायत नहीं कर सकते। उन्होंने कभी यह सपने में भी नहीं सोचा कि वे ऐसे प्रयत्न करें कि अन्य जातियों को अपने साथ ऐसा व्यवहार करने के लिए मजबूर करें जैसा एक इंसान दूसरे से करता है। उनके मन में हीन भावना इतना घर कर गई है कि वे ईसीलिए जन्मे हैं, उन्होंने कभी यह सोचा भी नहीं कि उनका निस्तार भी हो सकता है। उन्हें कोई यह नहीं समझा सकता कि सभी मनुष्य एक ही मिट्टी के बने हुए हैं और उन्हें यह अधिकार भी है कि वे अपने साथ अच्छे व्यवहार के लिए मांग करें।"

"... स्थिति से निपटने के लिए हमारे सम्मुख दो सम्भव उपाय है या तो बहुल निर्वाचन क्षेत्रों में उन अल्पसंख्यकों के लिए स्थान सुरक्षित किए जाएं जो अपने बलबूते पर नहीं जीत सकते, या फिर साम्प्रदायिक आधार पर चुनाव कराए जाएं। दोनों की ही उपयोगिता है। जहां तक मुसलमानों के प्रतिनिधित्व का सवाल है उन्हें आम चुनावों में बहुल निर्वाचन क्षेत्रों में अपने लिए सुरक्षित स्थानों पर चुनाव लड़ना चाहिए।"

"नई चेतना का तकाजा है कि सवर्ण हिन्दू अपने अलग-अलग हितों के लिए दो भागों में विभाजित हो जाएं, एक ब्राह्मण और दूसरा गैर-ब्राह्मण। पृथक् निर्वाचन मण्डल या तीनों सम्प्रदायों के लिए जिसमें कि हिन्दू विभाजित हैं, मिश्रित निर्वाचन मण्डलों में आरक्षित स्थानों की मांग की गई है। अछूतों को प्रतिनिधित्व दिए जाने के संबंध में विचार करने से पूर्व ब्राह्मण और गैर-ब्राह्मणों के प्रश्न पर कुछ विचार किया जाएगा।"

"... चूंकि गैर-ब्राह्मण शिक्षा के संबंध में पिछड़े हुए हैं, इसलिए उसे उनका विशेष हित नहीं कहा जा सकता। इसमें सामान्य जन का हित है यहां तक कि शिक्षा

की दृष्टि से पिछड़े ब्राह्मणों का भी। ब्राह्मणों का बौद्धिक तथा सामाजिक प्रभुत्व केवल गैर ब्राह्मणों को ही प्रभावित नहीं करता है बल्कि इससे सभी प्रभावित होते हैं। इस प्रकार इसमें सभी का हित है। यदि गैर-ब्राह्मणों को संरक्षण दिया जाता है तो विशेष रियायत कहां मिली।"

"गैर-ब्राह्मणों का पृथक् प्रतिनिधित्व का पक्ष इसलिए निर्बल पड़ गया क्योंकि वे एक समान गैर-ब्राह्मण हित नहीं जतला सके।"

हिन्दू धर्म की कुरीतियां

(1) इस (हिन्दू धर्म) में आचरण स्वतंत्रता एवं सहजता नहीं है बल्कि इसमें अन्य लोगों द्वारा लादे गए नियमों के असद् पालन का विधान है।

(2) इसमें विचारों के प्रति कोई निष्ठा नहीं केवल, आदेशों के पालन का उपदेश है।

(3) कानूनों में विषमता है क्योंकि अलग-अलग वर्ग के लिए भिन्न-भिन्न व्यवस्थाएं हैं। सभी पीढ़ियों के लिए समान कानूनों का विधान है।

(4) कानून पैगम्बरों या विधिकारों ने नहीं बनाए हैं,और,

(5) जो संहिता बनी हुई है वह पत्थर की लकीर है।"

उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि इस धर्म को समाप्त कर दिया जाए और इसके विनाश का संघर्ष अधार्मिक नहीं।

—अनहिलेशन ऑफ कास्ट, पृ० 73-74

ब्राह्मणवाद

आज विद्वत्ता का ठेका केवल ब्राह्मणों के पास है। परन्तु अभी तक किसी ब्राह्मण ने वाल्टेयर का स्थान नहीं लिया है, जिसने बौद्धिकता की निष्पक्षता दिखाई कि उसने उसी केथोलिक सिद्धांत के प्रति विद्रोह किया जिसमें वह पला-पनपा था, न ही ऐसा कोई व्यक्ति निकट भविष्य में सामने आने की आशा है। ब्राह्मण विद्वानों पर यह एक गम्भीर कलंक है कि वे एक भी वाल्टेयर पैदा न कर सके... ब्राह्मण विद्वानों में केवल पंडिताऊपन है, उनमें बुद्धि नहीं है... प्रत्येक ब्राह्मण अपनी जाति की श्रेष्ठता बनाए रखना चाहता है। ब्राह्मणों में वाल्टेयर के पैदा हो जाने से उस सभ्यता को निश्चित खतरा है जो ब्राह्मण श्रेष्ठता को प्रश्रय देती है।

—अनटचेबल्स-प्रस्तावना, पृ० 2-3

आर्यसमाजी

इस पुस्तक (हू वर दी शूद्राज) में आर्य समाज की जड़ खोदी गई है।"दो महत्वपूर्ण मुद्दों पर मेरा उनसे तीव्र विरोध है। आर्य समाजी विश्वास रखते हैं कि इण्डो-आर्यन समाज में शुरू से ही चार वर्ण थे। इस पुस्तक में बताया गया है कि एक ऐसा भी समय था जब केवल तीन वर्ण थे। आर्य समाजी मानते हैं कि वेद अमर और पवित्र हैं। इस पुस्तक में बताया गया है कि वेदों के कुछ अंश और विशेषकर पुरुष सूक्त जिस पर समाजियों की अडिग आस्था है, ब्राह्मणों के क्षेपक हैं जिससे उनकी स्वार्थ साधना हो। मेरे ये दोनों निष्कर्ष आर्य समाज की रूढ़ियों के विरुद्ध अणुबम का कार्य करेंगे। ...आर्य समाजियों ने यह प्रचार करके कि वेद अजर अमर हैं, इनका न आदि है न अंत, ये दोषहीन हैं, और हिन्दुओं का वेदों पर आधारित समाज संगठन भी अनादि और अमर है, अपरिवर्तनीय है, निर्दोष है, हिन्दू समाज को जड़वत बनाकर शरारत की है।

—हू वर द शूद्राज ? प्रस्तावना, पृ० 7-8

बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक

भारत में बहुमत साम्प्रदायिक बहुमत होता है। सामाजिक और राजनैतिक कार्यक्रमों से कोई वास्ता न होकर यह बहुसंख्यक समाज साम्प्रदायिक बहुमत का चरित्र प्राप्त कर लेता है। यदि ब्रिटेन जैसी कार्यपालिका यहां आ जाए तो अल्पसंख्यक शासित बनकर रह जाएंगे। इसे लोकतंत्र नहीं कहा जा सकता। इसे साम्राज्यवाद ही कहा जा सकता है।

—स्टेट एण्ड माइनोरिटीज, पृ० 36

आम्बेडकर ने पूछा : "अछूतों के लिए स्वराज्य क्या होगा ?" उन्होंने अपने क्षुब्ध स्वर में उत्तर दिया, "विधायिका उदासीन और कार्यपालिका उनके प्रति गूंगी-बहरी होगी। इस प्रकार स्वराज्य के आधीन अछूत उस निरादृत स्थिति से नहीं उबर सकते जो हिन्दुओं ने उन पर थोपी है।"

आम्बेडकर ने जिस तरह की कार्यपालिका का सुझाव दिया, वह है, (1) बहुमत को उस समय तक सरकार बनाने पर प्रतिबंध जब तक वह अल्पसंख्यकों को उनकी बात मनवाने का अधिकार न दे ; (2) बहुमत के स्वयं ही सारे प्रसारण पर अधिकार जमा लेने पर रोक ; (3) बहुसंख्यक दल को अल्पसंख्यकों का ऐसा

प्रतिनिधि अपनी सरकार में शामिल करने पर रोक जिसे अल्पसंख्यकों का विश्वास प्राप्त न हो ; (4) सक्षम और कुशल प्रशासन हेतु स्थिर कार्यपालिका की आवश्यकता।

अंत में उन्होंने सुझाव दिया कि अल्पसंख्यक मामलों के अधीक्षक के नाम से एक अधिकारी नियुक्त किया जाए। —वही, पृ० 37-38

चुनावों पर जातिगत प्रभाव

(1) चुनाव सदा साम्प्रदायिक होता है ; (2) केवल साम्प्रदायिक बहुसंख्या के आधार पर बहुसंख्यक समुदाय स्थान को जीत लेता है ; (3) अल्पसंख्यकों को विवश किया जाता है कि वे बहुसंख्यक उम्मीदवार के पक्ष में मतदान करें ; (4) अल्पसंख्यकों के मत कम होते हैं ; (5) बड़े सम्प्रदायों के मतदाता अल्पसंख्यक समुदाय के उम्मीदवार को कभी मत नहीं देते ; (6) अल्पसंख्यक समुदाय का मतदाता बहुसंख्यक समुदाय के उम्मीदवार को वोट देने में गौरव अनुभव करता है।

—थोट्स ऑन लिंग्यूस्टिक स्टेट, पृ० 34

उदारवाद

यदि उदारवादियों में रानडे के प्रति श्रद्धा और सम्मान है तो उनका परम धर्म यही नहीं है कि वे इकट्ठे होकर उनका गुणगान ही करते रहें बल्कि उन्हें रानडे के संदेश का प्रचार-प्रसार करना चाहिए।

उदारवादियों से उनके कर्तव्य पालन की क्या आशा है? आसार बड़े खराब हैं। 1936 के पिछले चुनावों में उदारवादियों ने चुनाव नहीं लड़ा। यह एक आश्चर्यजनक बात है। पर इससे शंकाएं दूर हो जाती हैं जब हम श्रीनिवास शास्त्री की यह घोषणा याद करते हैं कि मैं चाहता हूं कि कांग्रेस सफल हो। इसकी केवल एक ही मिसाल है, जब महाभारत में भीष्म ने कौरवों के साथ रहते हुए भी पांडवों की विजय की कामना की। इससे प्रकट होता है कि उदारवादियों ने भी रानडे का संदेश भुला दिया है। यदि पार्टी की यही दशा है तो इससे अच्छा है कि यह पार्टी समाप्त हो जाए। इससे एक नए मार्ग पर चलने का तो अवसर मिलेगा और हमें उदारवादियों की सनक से बचाएगा। ऐसा होने पर स्वयं रानडे अपनी कब्र में संतोष की सांस लेंगे।

—रानडे, गांधी एण्ड जिन्ना, पृ० 63-64

(1)पश्चिमी लेखकों ने इन अकाट्य तथ्यों को नजरअंदाज कर दिया है कि प्रत्येक देश में एक शासक वर्ग है। (2) वे यह नहीं समझ सके कि शासक वर्ग का प्रतिरोध, लोकतंत्र तथा स्वराज्य भावना परस्पर विरोधी हैं। (3) स्वराज्य या लोकतंत्र तभी सार्थक हो सकते हैं जबकि शासक वर्ग सत्ता प्राप्त करने से पूर्व अपना अधिकार दे। (4) शासक वर्ग इतना सुदृढ़ हो सकता है कि शासित वर्ग के लिए वयस्क मताधिकार के अतिरिक्त और भी संरक्षण आवश्यक है। (5) शासक वर्ग का सामाजिक दृष्टिकोण और सामाजिक दर्शन भी ध्यान में नहीं रखा गया है।

—पाकिस्तान ऑर पार्टीशन ऑफ इंडिया, पृष्ठ—300

लोकतंत्र एक ऐसी व्यवस्था एवं शासन प्रणाली है जिसमें आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में बिना रक्तपात के क्रांतिकारी परिवर्तन घट सकते हैं। इसकी शर्तें निम्नांकित हैं: (1) समाज में विषमता नहीं होनी चाहिए जैसे एक जाति के लिए विशेषाधिकार; (2) विपक्ष का अस्तित्व हो; (3) कानून और प्रशासन में समानता ; (4) संवैधानिक सदाचार पालन ; (5) बहुसंख्यकों का अत्याचार न हो ; (6) सामाजिक नैतिकता ; (7) जन और चेतना।

—पार्लियामेंटरी डेमोक्रेसी, पृ० 6

लोकतंत्र एक शासन प्रणाली नहीं है बल्कि सामाजिक संगठन का एक आकार है।

—स्टेट्स एण्ड मायनोरिटीज, पृ0 32

लोकतंत्र की रक्षा के आवश्यक साधन

(1) संवैधानिक तरीके: सविनय अवज्ञा असहयोग, और सत्याग्रह को वे अराजकता के व्याकरण की श्रेणी में गिनते थे। (2) स्वतंत्रता को किसी महान व्यक्ति के आगे समर्पित नहीं करना चाहिए—भक्ति या वीर पूजा,पतन और तानाशाही का मार्ग है। (3) राजनैतिक लोकतंत्र को सामाजिक लोकतंत्र बनाया जाए।

—संविधान सभा बहस भाग 11, पृ० 979

अपनी पुस्तक 'स्टेट्स एण्ड मायनोरिटीज' में उन्होंने लिखा है कि जब तक

आर्थिक संरक्षण नहीं है, तब तक मूल अधिकारों का कोई महत्व नहीं है। संसदीय लोकतंत्र स्वयमेव आर्थिक आदर्श प्राप्त नहीं कर सकता और तानाशाही से तभी बचा जा सकता है जबकि संसदीय लोकतंत्र की परिधि में सरकारी समाजवाद का मार्ग अपनाया जाए।

धर्मनिरपेक्ष सरकार

धर्मनिरपेक्ष सरकार का सिद्धांत पश्चिम की लोकतांत्रिक उदार परम्पराओं से निकला है। कोई भी संस्था जिसका खर्च सरकार उठाती है, धार्मिक शिक्षा नहीं दे सकती, चाहे वे निर्देश सरकार के ही क्यों न हों।

—सं० स० बहस —सं० स० 7, पृष्ठ 870–971

1951 में संसद में हिन्दू कोड बिल पर बहस में, उन्होंने धर्मनिरपेक्षता के स्वरूप की व्याख्या इस प्रकार की —"इसका यह अर्थ नहीं कि हम लोगों की धार्मिक भावनाओं को बिलकुल ही भुला दें। धर्म निरपेक्षता का अर्थ है कि सरकार लोगों को कोई धर्म विशेष मानने पर बाध्य न करे। संविधान जिस बात को मान्यता देता है वह केवल इतनी ही है।"

—संसदीय बहस अंक 3, भाग-2, पृष्ठ 2466

सरकार को अपने नागरिकों को अन्तःकरण स्वतंत्रता देनी चाहिए ताकि वे अपने धर्म का स्वतंत्रतापूर्वक पालन कर सकें। उन्हें अपने धर्म प्रचार का अधिकार प्राप्त हो और नैतिकता तथा सार्वजनिक व्यवस्था की सीमाओं में धर्म परिवर्तन का भी अधिकार प्राप्त हो।

—स्टेट्स एण्ड मायनोरिटीज, पृ० 11

भाषायी राज्य

आम्बेडकर के अनुसार भाषायी राज्य का अर्थ है, ऐसा राज्य जो जनसंख्या की दृष्टि से सजातीय हो और ऐसे सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अनुकूल हो जो एक लोकतांत्रिक सरकार के लिए जरूरी हैं। उनके विचार से भाषायी प्रांत का उस राज्य की भाषा से कोई सरोकार नहीं। उन्होंने कहा, "संविधान में यह व्यवस्था होनी चाहिए कि हर राज्य की सरकारी भाषा वही हो जो केन्द्र सरकार की है।"[1]

1 आम्बेडकर का मत भाषायी प्रांत आयोग के समक्ष

उन्होंने कहा कि एक संघीय शासन में संविधान भाषा के आधार पर नहीं होना चाहिए। राज्यों की सरकारी भाषाओं के आधार पर उनका गठन खतरनाक है। "इस तरह राज्य अलग राष्ट्र बन सकते हैं।"[2] उन्होंने कहा है एकता और राष्ट्रीय एकता के लिए सभी के लिए एक भाषा होना जरूरी है, वह है हिन्दी। आम्बेडकर ने पूछा—बहुमूल्य पुस्तकों का क्या लाभ? (संत कवि ज्ञानेश्वर और तुकाराम की) उन्होंने, 'एक भाषा अनेक राज्य' फार्मूले का समर्थन किया।

आम्बेडकर बहुभाषी राज्यों का गठन चाहते थे। अल्पसंख्यकों के हित संरक्षण के लिए उन्होंने सुझाव दिया कि विभिन्न भाषायी राज्यों के सदस्यों की एक समिति बनाई जाए जो राज्यपाल से अपील कर सके। पोट्टिल श्री रामलू की मृत्यु के बाद उन्होंने कहा कि कुछ और एक भाषी राज्य भी बन सकते हैं। वे महाराष्ट्र के एकीकरण के विरुद्ध थे। उन्होंने कहा, "मैं मराठी कहलाना तक पसंद नहीं करता।"[3] संयुक्त महाराष्ट्र के लिए आंदोलन एक गैर-दलीय संगठन ने चलाया। डी० आर० गाडगिल, डी० वी० पोतदार, एस० ए० डांगे, देव और एम० आर० जयकर जैसे विचारों वाले प्रमुख व्यक्तियों ने संयुक्त महाराष्ट्र परिषद के संगठन में सहयोग दिया। इस परिषद ने राज्य पुनर्गठन आयोग के समक्ष अपना मुद्दा पेश किया; लेकिन आम्बेडकर ने आयोग के सामने अपना अलग पक्ष प्रस्तुत किया। संयुक्त महाराष्ट्र के समर्थकों ने संयुक्त महाराष्ट्र समिति बनाई और द्विभाषी बम्बई राज्य की स्थापना के विरुद्ध आंदोलन छेड़ दिया। आम्बेडकर का दल शि० का० फे० इसमें शामिल था। उन्होंने कहा, "द्विभाषी बम्बई राज्य का बंटवारा किया जाए। उन्होंने घोषणा की कि मैं संयुक्त महाराष्ट्र और द्विभाषी बम्बई राज्य के भी विरुद्ध हूं।"[4]

उन्होंने कहा कि भारत में भाषावाद साम्प्रदायिकता का दूसरा रूप है। महाराष्ट्र में मराठों का बाहुल्य है। जो शासक बनेंगे वे मराठी भाषी नहीं, मराठा जाति के होंगे।[5] वे यह जानते थे कि मराठों के शासन में अल्पसंख्यकों विशेषतः अनुसूचित जातियों के प्रति न्याय नहीं हो सकता।[6] उन्होंने कहा कि मराठों में तिलक, गोखले, रानडे की ख्याति का कोई व्यक्ति नहीं है।[7]

उन्होंने साम्प्रदायिक बहुमत के प्रति चेतावनी दी जिसका कि जन्म हो चुका

---

2 यथोपरि

3 राज्यसभा में भाषण 2-9-1955

4 लेटर्स टू गायकवाड़

5 थोटस आन लिंग्विस्टिक स्टेटस

6 श्रीनिवास कास्ट् इन मार्डन इण्डिया

7 थोटस आन लिंग्विस्टिक स्टेटस

है। उन्होंने छोटे राज्यों का समर्थन किया। उनके अनुसार जैसे-जैसे क्षेत्र बढ़ता जाता है अल्पसंख्यकों की बहुलता का अनुपात घटता जाता है। उनका सुझाव था कि अल्पसंख्यकों के संरक्षण के लिए संविधान में संशोधन किया जाए और दो या तीन सदस्यों के निर्वाचन के लिए निर्वाचन क्षेत्र बनाए जाएं जिसमें कि संचित मतदान प्रथा हो।[8]

संवैधानिक गतिरोध दूर करने की योजना

आम्बेडकर ने गवर्नमैण्ट आफ इंडिया (प्राथमिक प्रावधान कानून) अधिवेशन के नाम से एक योजना प्रस्तुत की। इस के अनुसार निम्न सुझाव दिए गए थे :

(1) विभाजन के पक्ष और विपक्ष में मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के अलग-अलग मत लिए जाएं। यदि मुसलमानों का बहुमत विभाजन के पक्ष में हो और गैर-मुसलमानों का विपक्ष में तो ऐसे क्षेत्रों का मुस्लिम-बहुल और गैर-मुस्लिम-बहुल जिलों के रूप में सीमांकित किया जाए। (2) एक सीमा आयोग, सम्भवत: अन्तर्राष्ट्रीय सीमा आयोग बनाया जाए, (3) हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के रूप में देश का विभाजन किया जाए।

गैर-मुसलमानों के लिए वे एक अलग जनमत संग्रह के पक्ष में थे जो यह फैसला करे कि वे पाकिस्तान जाना चाहते हैं या भारत में रहना।

उनकी योजना में एक परिषद् का सुझाव था। इसे संघ या परिसंघ नहीं समझा जाना चाहिए। यह भारत और पाकिस्तान का मिलन स्थल हो सकता था।

—पाकिस्तान ऑर पार्टीशन ऑफ इंडिया, पृ० 284-290

भारत की सार्वभौमिकता और प्रभुसत्ता

रजवाड़ों के सम्बंध में आम्बेडकर देश की सार्वभौमिकता और प्रभुसत्ता के पक्षधर थे। उन्होंने कहा, "जब सम्पूर्ण सार्वभौमिकता हस्तांतरित हो गई है तो किसी शासक विशेष का क्षेत्र भी भारत का क्षेत्र हो गया है, जिसकी सम्पूर्ण सार्वभौम सत्ता भारत सरकार में निहित है।"[9] उन्होंने कहा, मैं अंतरिम सरकार से अनुरोध करूंगा कि वह यह कदम उठाए :—"(1) ब्रिटिश सरकार को बताया जाए कि हमारी प्रभुसत्ता को लांघकर उनकी संसद् भारत के विषय में कोई कानून नहीं बना सकती

8 यथोपरि

9 के० स० बहस, भाग सात

और इस प्रकार का कोई भी कार्य जिससे भारत की अधीनता का आभास मिले, भारत की जनता द्वारा अपनी प्रभुसत्ता का उल्लंघन समझा जाएगा और वह प्रभावहीन होगा। (2) भारत सरकार किसी भी भारतीय राज्य को स्वतंत्र सार्वभौम सत्ता के रूप में स्वीकार नहीं करेगी। (3) संयुक्त राष्ट्र संघ को यह बताया जाए कि यदि कोई भारतीय राज्य अपने को स्वतंत्र घोषित करता है तो उसे विश्व संस्था में शामिल न किया जाए। अगर ऐसा किया गया तो भारत की जनता इसका प्रबलतम विरोध करेगी, क्योंकि यह भारतीय संघ की सार्वभौमिकता का उल्लंघन होगा।''[10]

संविधान समाजवादी है

के० टी० शाह ने संविधान के प्रथम अनुच्छेद पर एक संशोधन प्रस्ताव रखा। इसमें कहा गया था, "भारत एक धर्मनिरपेक्ष संघीय राज्यों का समाजवादी संघ होगा।"

आम्बेडकर ने कहा, "इस संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं। उनकी टिप्पणी थी : "यदि ये नीति-निर्देशक सिद्धान्त भी समाजवादपरक नहीं हैं तो मेरी समझ में नहीं आता कि और क्या समाजवादी होगा। ये समाजवादी सिद्धांत हमारे संविधान में पहले ही शामिल कर लिए गए हैं।

आर्थिक लोकतंत्र

आम्बेडकर ने कहा कि प्रस्तावित संविधान राजनैतिक लोकतंत्र की स्थापना होगा और सरकारों का गठन करने वालों के सामने आदर्श प्रस्तुत करेगा। यह आदर्श है—आर्थिक लोकतंत्र। आम्बेडकर के विचार में नीति निर्देशक सिद्धांतों का बहुत महत्व है, क्योंकि इनमें आर्थिक लोकतंत्र का आदर्श निहित है।

—सं० स० बहस भाग सं० स० पृष्ठ 494

कृषि मजदूर

आम्बेडकर केवल कारखाना मजदूरों के विषय में ही नहीं सोचते थे बल्कि खेत मजदूरों की ओर भी उनका जोर था। वे चाहते थे कि सभी मजदूरों के लिए काम

10 ए० सी० बनर्जी—मेकिंग आफ इण्डियन कांस्टीटयूशन

की शर्तें भी वैसी ही हो जैसे—भविष्य निधि, मालिक के दायित्व, मजदूरों का मुआवजा, स्वास्थ्य बीमा, अक्षमता पेंशन शामिल हों, फिर चाहे वे खेत मजदूर हों या कारखाना मजदूर, ये सुविधाएं सभी को मिलें।

—सं० स० बहस भाग सं० स० पृष्ठ 944-945

वर्ग विभाजन

समाज के वर्ग विभाजन को आम्बेडकर अलोकतांत्रिक और अवास्तविक मानते थे। उन्होंने इसकी निंदा की। उनकी टिप्पणी थी—"वर्ग विभाजन के परिणामस्वरूप विशेषाधिकार प्राप्त जातियां बन गई हैं जिनमें असामाजिक भावनाएं पैदा होती हैं।"

—कांग्रेस एण्ड गांधी, पृ० 296

सरकारी समाजवाद

आम्बेडकर के समाजवाद का आदर्श था कि गरीबी पर प्रहार। उन्होंने दो बातों पर जोर दिया, "सरकारी समाजवाद" और "संवैधानिक नियम और संसदीय लोकतंत्र"। वे चाहते थे कि खेती की सारी जमीन सरकार के अधिकार में आ जाए और लोकतांत्रिक आधार पर सामूहिक खेती की व्यवस्था हो।

चकबंदी और आसामी कानूनों से भूमिहीन मजदूरों, दलित जातियों, शूद्रों और अछूतों को कोई लाभ न होगा ; उनके हित में तो केवल सामूहिक खेती ही है बशर्ते कि कृषि को सरकारी उद्योग बना दिया जाए।

—आम्बेडकर : स्टेट्स एंड माइनोरिटीज, पृ० 15

आम्बेडकर समझते थे कि भूमिहीन मजदूरों की समस्या खाली पड़ी भूमि को कृषि के अन्तर्गत लाकर हल की जानी चाहिए और यह जमीन भूमिहीन मजदूरों को दी जाए। उनके अनुसार चकबंदी और आसामी कानून इस मामले में व्यर्थ हैं। "उनसे अछूतों को कोई लाभ नहीं, जो भूमिहीन मजदूर हैं, उनके लिए तो केवल सामूहिक खेती ही सहायक हो सकती है।"

"जमींदारी प्रथा समाप्त किए जाने के बाद भूमि का स्वामित्व सरकार का हो मालिकों या किसानों का नहीं। जमींदारी उन्मूलन का परिणाम सामूहिक या सहकारी खेती होना चाहिए।"

आम्बेडकर का विचार था कि अछूत जातियां पूरी तरह सवर्ण जातियों के आर्थिक प्रभुत्व में हैं। उन्होंने सुझाव दिया कि सरकार द्वारा सामूहिक खेती और उद्योगों के सरकारी समाजवादीकरण की व्यवस्था की जाए।

—आम्बेडकर : स्टेट्स एंड माइनोरिटीज, पृ० 37

आम्बेडकर ने श्रीपाद अमृत डांगे से पूछा, "सबको देने के लिए जमीन है कहां?" वे उनसे कुछ समस्याओं पर विचार कर रहे थे। आम्बेडकर ने कहा, "मैं सोवियत प्रणाली को पसंद करता हूं। कृषि का सामूहिकीकरण किया जाना ही हमारी समस्याओं का समाधान है। मेरे विचार से कृषि की सोवियत प्रणाली ही सर्वोत्तम है। —नवयुग विशेषांक

जातिवाद और समाजवाद

आम्बेडकर का कहना था कि जाति भावनाओं से आर्थिक विकास रुकता है। इससे वे स्थितियां पैदा होती हैं जो कृषि तथा अन्य क्षेत्रों में सामूहिक प्रयत्नों के विरुद्ध हैं। जात-पांत के रहते हुए ग्रामीण विकास समाजवादी सिद्धांतों के विरुद्ध रहेगा। इसलिए जातिवाद के कारण जो बड़े-बड़े इजारे बन गए हैं उन्हें तोड़ा जाए और जमीन उन लोगों में बांट दी जाए जो उसे जोतते हैं या सामूहिक खेती कर सकते हैं और निर्माण कर सकते हैं, जिससे शहरों और गांवों में तेजी से प्रगति हो।

—अनहिलेशन ऑफ कास्ट, पृ० 19

उद्योगों का राष्ट्रीयकरण

आम्बेडकर ने जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण और उद्योगों को सरकारी प्रबंध एवं अधिकार में लेने का सुझाव दिया।

—शि० का० फे० चुनाव घोषणापत्र, 1952

गांधीवाद पर प्रहार

"गांधीवाद धनिकों का दर्शन है और ठाली बैठों का काम है। इसमें लोगों को यह बहकाने का प्रयत्न किया गया है कि वे अपने मुसीबतों को करनी का फल या भाग्यचक्र मान लें। गांधीवाद में गंदगी सफाई का काम सर्वोच्च समाज सेवा बताया गया है। परन्तु इसके बावजूद यह मुसीबत जानबूझ कर एक ही जाति के मत्थे मढ़ी जा रही है।"

—कांग्रेस एंड गांधी, पृ० 280-284

अनुसूची 1

कुछ महत्वपूर्ण शब्दों की व्याख्या

अनार्य

अनार्य शब्द प्राचीन ग्रंथों में उन मूल निवासियों और अनार्य जातियों एवं लोगों के लिए प्रयुक्त होता था जो आर्यों के भारत पर आक्रमण करने से पूर्व इस देश में रहते थे। आर्यों ने बहुत-से आदिवासियों को दास बना लिया था।

आश्रम

द्विज हिन्दू के लिए जीवन की चार अवस्थाएं। उच्चकुलीन द्विज हिन्दू का जीवन चार कालों या अवस्थाओं में विभाजित था, जिसमें उसे कुछ-न-कुछ काल व्यतीत करना पड़ता था ताकि देवताओं का (बलिदान द्वारा), ऋषियों का (अध्ययन द्वारा), पूर्वजों का (पुत्रोत्पत्ति द्वारा) ऋण चुकाया जा सके। ये चार आश्रम हैं—(1) ब्रह्मचर्य, (2) ग्रहस्थ, (3) वानप्रस्थ एवं (4) संन्यास।

भगवद्गीता

महाभारत के भीष्म पर्व के 25 से 42वें अध्याय में वर्णित दार्शनिक प्रसंग। यह श्रुति का अंग न होकर स्मृति का भाग है।

बोधिसत्व

'परित्राता बुद्ध' के रूप में महायान का यह परम् विश्वास कि बुद्ध मानव के मुक्ति पथ के मार्ग-दर्शन के लिए कुछ अंतराल के बाद बार-बार पृथ्वी पर जन्म लेते हैं। बोधिसत्वों के लिए जाति का कोई स्थान नहीं है।

ब्राह्मणवाद

ब्राह्मणवाद धर्म वास्तव में वर्णाश्रम प्रथा ही है। कहा जाता है कि यह वैदिक काल से ही प्रचलित है और इसे अपरिवर्तनीय समझा जाता है। वर्णाश्रम व्यवस्था में

चार वर्ण गिनाए गए हैं। पांचवां वर्ण इससे बाहर है। पहले तीन वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विज कहलाते हैं ; उनका उपनयन होता है।

बुद्ध ('568–483 ई० पू०')

उनका नाम सिद्धार्थ था, वह शाक्य कबीले के गौतम कुल के क्षत्रिय राजा शुद्धोधन के पुत्र थे। उनकी माता महारानी माया लिच्छवी वंश की राजकुमारी थीं।

बौद्धधर्म

गौतम बुद्ध के सिद्धांतों पर आधारित धर्म। बुद्ध के जीवन चरित्र से ऐसा संकेत नहीं मिलता कि उन्होंने हिन्दू धर्म में सुधार किया। वे कर्मकांड के विरुद्ध थे, पूजापाठ एवं बलि प्रथा के निंदक और जाति प्रथा को सर्वथा मिथ्या तथा अनुचित मानते थे। इस प्रकार बौद्ध धर्म ब्राह्मणवाद और वेदों के सिद्धांतों के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी।

जाति

"कुछ अर्थों में जाति एक ऐसा कक्ष-सदृश (कोठरीनुमा) ढांचा है जो अन्य ऐसे ही कोठरों से अपने बहुत-से हितों के लिए अलग रहता है और उनसे अंशतः एक स्वतंत्र जीवन जीता है।"—कर्वे (हिन्दू सोसायटी) "जाति का व्यवसाय से कोई सरोकार नहीं"—घुर्ये। जातिवाद के पचड़े के कारण एक जाति के व्यक्ति को दूसरी जाति के व्यवसाय अपनाने की छूट नहीं दी गई।

[1961 की जनगणना के मुताबिक महार सबसे अधिक शहरी जाति (महाराष्ट्र में 23 प्रतिशत) बन गई हैं।]

चातुर्वर्ण्य

मनु ने समाज को चार भागों में वर्गीकृत किया। इस वर्णाश्रम व्यवस्था से लोगों के व्यवसाय का विभाजन उनकी जातियों के आधार पर होने लगा। हिन्दू समाज व्यवस्था जिन चार वर्णों पर टिकी है, वे हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

महारवाड़ा

महाराष्ट्र के ग्रामीण जीवन में महार एक महत्वपूर्ण अंग है। जहां भी कोई गांव है वहीं 'महारवाड़ा' भी है। उन्हें बस्तियों के बाहर रहने दिया जाता है और

वही जगह महारवाड़ा कहलाती है। महारों की स्थिति मराठों और आदिवासियों के बीच की है।

गांवों में महारों का धंधा है लकड़ी काटकर लाना, चिट्ठियां ले जाना, घरों के बाहर की सफाई करना, श्मशान में उपले ले जाना और कब्र खोदना। ये परम्परागत ढंग से गांवों के नौकर हैं। ये सरकारी खजाने की पहरेदारी करते और अधिकारियों की डाक लाते-ले जाते रहे हैं। लगान वसूली के लिए लोगों को दफ्तर बुलाने का संदेश देना और गांवों की सड़कों की सफाई इनका काम रहा है।

मनु ('600 ई० पू०–ईस्वी 300)

हिन्दू विधि विधान के प्रमुख रचनाकार। मनु की संहिता को मनुस्मृति कहा जाता है। इसमें सामाजिक, नैतिक और आत्मिक पक्षों पर नियमों का संकलन है और संस्कार विधियां वर्णित हैं।

स्मृति का मुख्य उद्देश्य है भारत में जाति प्रथा को दैवी मान्यता प्रदान करना, जाति भावना का महत्व बढ़ाना और ब्राह्मणों की श्रेष्ठता स्थापित करना।

शूद्र

हिन्दुओं का चौथा वर्ण। महाभारत और पुराणों में शूद्रों का संबंध अनार्य जाति अहीर से है। एक सिद्धांत यह है कि उन्हें आर्य वर्ग में चौथे वर्ण के रूप में शामिल कर लिया गया। दूसरा विचार है कि शूद्र आर्यों का वह निर्धन वर्ग जिसके पास कृषि के लिए भूमि नहीं थी और जो आर्यों के खेतों में मजदूरी करते थे। शूद्रों को धन संग्रह का अधिकार नहीं दिया गया था।

वैश्य

हिन्दुओं का तीसरा वर्ण। यद्यपि द्विजों की श्रेणी में है और सवर्णों को प्रदत्त कुछ अधिकार इन्हें प्राप्त हैं परन्तु फिर भी वैश्यों का स्थान नीचा ही रहा। इस वर्ण के लोग व्यापारी, दुकानदारी, साहूकारी का धंधा करते हैं।

वेद

हिन्दुओं का मूल धर्म ग्रंथ। वेदों को अपौरुषेय कहा जाता है। देवताओं के समान इनका आदर है और ये असंशोधनीय हैं। अजर-अमर हैं।

प्रार्थमिक रूप में चार वेद हैं। परन्तु अपनी ऋचाओं के आधार पर ये विभिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं जिन्हें संहिता कहा जाता है। पहले तीन वेद थे: ऋगवेद, यजुर्वेद और सामवेद। इनके चार-चार अंग इस प्रकार हैं—मंत्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद।

अनुसूची 2

आम्बेडकर के बाद की स्थिति

आम्बेडकर के निर्वाण के पश्चात् युगांतरकारी दो घटनाएं घटीं। एक थी धर्म परिवर्तन आंदोलन और दूसरी थी 'रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया' का गठन और तद्जनित दलित पैंथर आंदोलन। यहां इस बात पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है।

धर्म परिवर्तन आंदोलन

आम्बेडकर का धर्म परिवर्तन संबंधी निर्णय आकस्मिक नहीं था, बल्कि यह सुविचारित निश्चय था। उन्होंने जो मुक्ति संघर्ष छेड़ा था, उसका एक अंग था। परंतु फिर भी वे हिन्दू सम्प्रदाय से अपना संबंध पूर्णत: विच्छेद करना नहीं चाहते थे। उन्होंने हिन्दू समाज को पर्याप्त समय दिया कि वह इसमें सुधार करे और छुआछूत तथा जातिवाद जैसे वितण्डावाद को दूर करे। अन्ततोगत्वा उन्होंने बौद्धधर्म को चुना जिसे हिन्दू धर्म की ही एक शाखा कहा जा सकता है, बस उसमें जातिवाद और महन्तवाद को स्थान नहीं दिया गया, क्योंकि यह धर्म उनके सिद्धांतों के अनुकूल था, जो हैं: मानवीय महत्व, स्वतंत्रता, समानता और सहानुभूति आदि। उनके अनुसार इसके दो पक्ष हैं—एक आध्यात्मिक और दूसरा सामाजिक। वे सोचते थे कि बौद्धधर्म की दीक्षा लेकर हरिजनों में आत्म-सम्मान की भावना बढ़ेगी और उनका अलग अस्तित्व होगा।

अधिकांश धर्म परिवर्तन महारों ने किया। यद्यपि ऊपर से परिवर्तन आया किंतु सवर्ण हिन्दुओं और हरिजनों के संबंधों को सुधारने में प्रभावी भूमिका न निभा सके। इसके साथ यह भी उल्लेखनीय है कि उनमें धार्मिक परिवर्तन तो आ गया परंतु उनका आर्थिक पक्ष जहां का तहां रहा। परिणामस्वरूप उन्होंने अपने पुराने व्यवसाओं को तिलांजलि दे दी परंतु वे नए व्यवसाओं में न लग सके। इससे उनमें आंतरिक तनाव उत्पन्न हो गया। परंतु इन सब कठिनाइयों के बावजूद यह समझा

गया था कि उन पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ेगा जिससे उनमें आशा और समृद्धि की लहर आएगी।

महार सम्भवत: महाराष्ट्र के मूल निवासी थे जिन पर आर्य आक्रमणकारियों ने विजय प्राप्त की थी और हजारों साल पहले भारत के मैदानों पर कब्जा कर लिया था। महार मैदानों के निवासी हैं, पर्वतों के नहीं। पूर्व पृथक्करण को ध्यान में रखते हुए इन्हें पूषित किया जाता रहा। जहां भी कोई गांव है वहीं महार टोला है। इसका अर्थ है, हर गांव में महार हैं। उन्हें 'वतन' दिए गए और उनके कार्य थे गांव की सीमाओं की रक्षा, लगान वसूली में सहायता, और खेतों की माप जोख में सहायता। अस्पृश्यता का जन्म उनके रंग और वंश के आधार पर हुआ। इस तरह यह काम के आधार पर आरम्भ नहीं हुई और इसलिए पेशा बदल देने से भी उसके जन्म से मिला दुर्भाग्य उससे चिपका रहता है।[1]

महारों में परिवर्तन के निम्नांकित कारण थे: (1) आम्बेडकर का नेतृत्व, (2) जातीय एकता, (3) आर्थिक और राजनैतिक हितों की समानता, (4) प्राप्त शिक्षा सुविधाओं का भरपूर उपयोग, (5) विसंस्कृतिकरण, (6) सामूहिक बौद्ध धर्म दीक्षा।

जहां तक धर्म परिवर्तन का प्रश्न है, देश भर में महाराष्ट्र इसका प्रमुख केन्द्र था और महाराष्ट्र में भी नागपुर इसका केन्द्रबिन्दु था। नागपुर और इसके आसपास महारों का जमाव सर्वाधिक है। इनकी संख्या 70% है। निम्नांकित आंकड़ों से धर्म परिवर्तन की झलक मिलेगी।

1.	महाराष्ट्र	1951	24,87	बौद्ध
		1961	27,89,501	,,
		1971	32,64,223	,,
2.	भारत	1951	1,80,767	,,
		1961	32,50,227	,,

उपरोक्त संख्या में से 27,89,501 अकेले महाराष्ट्र में थी और इनमें से 80% महार हैं।[2]

961-1971 के बीच 5.6 लाख की नाममात्र की वृद्धि हुई है जिससे यह संख्या 38,12,325 पहुंची!

1 भट्ट, हरिजन्स ऑफ महाराष्ट्र।

2 बरात, अस्पृश्यांचि धर्मांतर पृ० 210।

1961-71 के दौरान महाराष्ट्र में बौद्धों की वास्तविक जनसंख्या में 4,74,722 की वृद्धि हुई। यह स्वभाविक वृद्धि थी और इससे पता चलता है कि धर्म परिवर्तन का असर नहीं रहा। भारत में बौद्धों की जनसंख्या में वृद्धि का श्रेय महाराष्ट्र को है क्योंकि आम्बेडकर के नेतृत्व में सामूहिक धर्म परिवर्तन हुआ। बौद्धों की संख्या 40 लाख है जो कुल जनसंख्या का 0.70 % है। फिर भी यह राज्य की कुल जनसंख्या का 6.47 % बैठता है। अरुणाचल प्रदेश में बौद्धों की संख्या 13.3 प्रतिशत है। संविधान के अनुच्छेद 330,332 और 334 में अनुसूचित जातियों के लिए संसद और राज्य विधान सभाओं में स्थान सुरक्षित किये गए हैं। यह व्यवस्था 1980 तक है।

1. लोकसभा 77 अ० ज० और 41 अ० ज० जा०
2. राज्य विधान सभाएं 3283 में से 477
3. महाराष्ट्र 44 संसदीय स्थानों में से 6
   " 264 विधान सभा स्थानों में से 33

   महाराष्ट्र के 26 जिलों की जिला परिषदें 1,271 स्थानों में से 72

एस० पटवर्धन ने कहा "अस्पृश्यता प्रचलन के विषय में 1962 में महाराष्ट्र सरकार द्वारा गठित समिति की संक्षेप जांच रिपोर्ट मे कहा गया है कि अस्पृश्यता के संबंध में स्थिति यह है कि यह बीमारी सब जगह तेजी से दूर होती जा रही है। शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा तीव्रता से लुप्त हो रही है।...समिति का विचार है कि हरिजनों के बौद्ध धर्म अपना लेने से अस्पृश्यता विरोधी अभियान को सम्बल मिलने के बजाय उसमें शिथिलता आ गई है। यह पृथकता है जिससे बहुसंख्यकों और महारों के मध्य संघर्ष उत्पन्न हुआ है। ...महार गांवों में रहते हैं और अब उन गांवों के अन्य लोगों के साथ सहयोग नहीं करते। वे गांवों के समाज से भिन्न हो गए हैं। इससे अत्यधिक विक्षोभ और असंतोष उत्पन्न हुआ ...महाराष्ट्र सरकार की रिपोर्ट में इस बात पर बल है कि धर्म परिवर्तन अभियान से अस्पृश्यता निवारण अभियान पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। "लेखक ने आगे लिखा है," अस्पृश्यता विरोधी अभियान में प्रगति न होने का एक बड़ा कारण यह है कि यह समस्या अन्य पिछड़े वर्ग की समस्याओं के साथ आत्मसात हो गई। हरिजनों और सवर्ण हिन्दुओं के बीच वैमनस्य है। परंतु एक बात अवश्य है कि महार नवबौद्ध अपने को अब अछूत नहीं मानते। असुरक्षा की भावना का कारण वतन और बलूता प्रथा का समाप्त होना है, इनकी वजह से वे आधारहीन हो गए हैं।[3]

---

3 पटवर्धन: चेन्ज अमंग इंडियाज़ हरिजन्स पृष्ठ 174-175

महार चाहते थे कि जाति के आधार पर ऊंच-नीच का अंतर समाप्त हो जाए, इसलिए उन्होंने धर्म परिवर्तन किया, परंतु अलग पहचान फिर भी बनी रही। सत्ता किसी जाति को सम्मान नहीं दिलाती बल्कि एक जाति विशेष में जन्म लेने से व्यक्ति को सत्ता और अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। समाज से महारों के अलग-थलग पड़ने के निम्नांकित कारण हैं: (क) जाति और पेशे से संबंध विच्छेद (ख) उपजाति का परित्याग (ग) भूतकाल के संबंध में बात करने की अनिच्छा, (घ) पुरानी स्थिति को समाप्त करना, (ङ) हिन्दू धर्म के संस्कार, व्रत और त्योहारों का परित्याग, (च) बढ़ती साक्षरता, (छ) मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्तियों का अधिकाधिक उपयोग, (ज) पर्याप्त व्यक्तिगत गतिशीलता और (झ) जातिगत समाज का पूर्ण त्याग कर बौद्ध धर्म ग्रहण करना और रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया का गठन।[4] अंत में कहा जा सकता है कि महारों ने शिक्षा प्राप्ति, उच्च शिक्षा और राजनैतिक गतिविधियों के साथ हितों का गठबंधन कर धर्म निरपेक्षता का मार्ग चुना। उनका बौद्ध धर्म परिवर्तन केवल राजनैतिक गतिशीलता में वृद्धि मात्र था।

रिपब्लिकन पार्टी

केबिनेट मिशन के दौरान क्रिप्स ने टिप्पणी की थी कि "डा० आम्बेडकर का संगठन स्थानीय है क्योंकि इसका क्षेत्र केवल बम्बई और सी०पी० है जबकि कांग्रेस से सम्बद्ध संगठन पूरे देश में फैला है।"[5]

डा०आम्बेडकर ने यह महसूस किया कि भारतीय जनता में पनप रही लोकतंत्र की नवीन भावना के संदर्भ में पुराने तरीके तथा दृष्टिकोण अनुकूल नहीं हैं। उन्होंने सभी के साथ सहयोग का नया सिद्धांत अपनाया परंतु उनके असामयिक निधन से उनका स्वप्न साकार न हो सका और वे भारतीय रिपब्लिकन पार्टी का गठन अपनी आंखों से न देख सके।

रिपब्लिकन पार्टी का गठन शि० का० फे० के स्थान पर किया गया था जिसमें देश के अछूत और पिछड़े वर्ग शामिल थे। 1957 में शि०का०फे० का नया नाम भारतीय रिपब्लिकन पार्टी रखकर इसे राष्ट्रीय रूप दिया गया। परंतु इसमें महारों का प्रभुत्व था। इसमें जातिवाद का बोलबाला था। कांग्रेस के साथ गठबंधन से इसे धर्म निरपेक्षता की ओर बढ़ने में सहयोग मिला।

हांलाकि रिपब्लिकन पार्टी ने अनुसूचित जातियों की पार्टी होने के बावजूद

4 यथोपरि पृष्ठ 190

5 अप्पादुराय और एम० ग्रोयार पृष्ठ 639

भूमिहीन मजदूरों की समस्याओं पर बहुत ध्यान दिया जिनमें से अधिकांश इन्हीं जातियों के हैं। इसका कारण गायकवाड़ का नेतृत्व था जिनका अन्य रिपब्लिकन नेताओं से भिन्न किसान समुदाय में अच्छा प्रभाव था। गायकवाड़ के नेतृत्व में धुलिया, जलगांव और नासिक जिलों तथा नागपुर क्षेत्र के कुछ भागों में भूमिहीन मजदूरों का एक आंदोलन छिड़ा। 1959 में इस आंदोलन के अन्तर्गत 50,000 मजदूर जेल गए। 1964 के अंत में पार्टी ने एक और बड़ा आंदोलन छेड़ा जिसमें कहा गया था कि खाली जमीन और रेलवे लाइनों तथा नहरों के साथ-साथ खाली पड़ी जमीन खेती के लिए खेतीहर मजदूरों को दे दी जाए। जब कांग्रेस ने इस पार्टी की बढ़ती हुई शक्ति का अंदाजा लगाया तो उसने 1967 में इसके साथ चुनाव सहयोग का विचार किया। यही रिपब्लिकन पार्टी में बिखराव की शुरूआत थी जिसका सिलसिला शुरू हो गया।

अपने गठन के बाद से ही रिपब्लिकन पार्टी गुटों में बंट गई। इनमें सर्वाधिक शक्तिशाली गायकवाड़ गुट कहा जाता था जिसने महाराष्ट्र में कांग्रेस के साथ समझौता कर लिया। खोबरगड़े और गायकवाड़ गुट को कांग्रेस के साथ समझौता कर लेने से लाभ हुआ। खोबरगड़े राज्य सभा के उपसभापति बन गए जबकि कांग्रेस की सहायता से पार्टी के कई महार नेता राज्य सभा और महाराष्ट्र विधान परिषद् के सदस्य बन गए। जिन्होंने रिपब्लिकन पार्टी छोड़ दी और कांग्रेस में शामिल हो गए उन्हें भी लाभ हुआ। कांग्रेस का विरोध और फिर सहयोग करने से इसके सदस्यों को जिला परिषदों, और दूसरी संस्थाओं तथा सरकारी विभागों और निगमों के पदों के रूप में काफी लाभ मिला जबकि रिपब्लिकन पार्टी खुल कर महारों की पार्टी रही। किसी अन्य विपक्षी दल ने शेष अनुसूचित जातियों को संगठित करने का प्रयत्न ही नहीं किया। इसका परिणाम यह निकला कि मांग तथा चमार जैसी अन्य जातियों ने किसी विकल्प के अभाव में कांग्रेस का ही समर्थन किया। प्रधानमंत्री के समक्ष एक मांगपत्र प्रस्तुत किया गया। 1965 में एक विशाल जलूस निकाला गया जिसमें एक सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र व्यवस्था का विरोध किया गया था। दक्षिण महाराष्ट्र में भुखमरी विरोधी आंदोलन छेड़ा गया जिसमें सभी विपक्षी दलों ने सहयोग किया। इन आंदोलनों में रिपब्लिकन पार्टी ने प्राय: अपने जाति-बंधुओं के प्रति ही अनुराग दिखाया।

आम्बेडकर सत्याग्रह छेड़ने के विरुद्ध थे क्योंकि उन्होंने सोचा कि इससे सवर्ण हिन्दू नाराज हो जाएंगे। उन्होंने संवैधानिक तरीकों का ही समर्थन किया। आखिर वे सत्याग्रह को अराजकता का श्रेणी में ही गिनते थे। गायकवाड़ को पता था कि कालाराम मंदिर सत्याग्रह विफल हो गया है और उन्होंने अपने 19-3-1930 के पत्र में

भी यह बात डा० आम्बेडकर को लिख दी थी। आम्बेडकर की मृत्यु के बाद बी० सी० काम्बले और गायकवाड़ के बीच संघर्ष छिड़ गया जो काम्बले की उस पुस्तक से स्पष्ट परिलक्षित होता है जो उन्होंने सत्याग्रह अभियान का मूल्यांकन करने के लिए लिखी थी।

रिपब्लिकन पार्टी के नेताओं, गायकवाड़, खोबरगड़े तथा अन्य ने तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री को जो मांग पत्र पेश किया था उसमें मांग की गई थी कि (1) संसद के केन्द्रीय कक्ष में डा० आम्बेडकर का चित्र लगाया जाए (2) जोतदार को ज़मीन (3) फालतू और बेकार पड़ी जमीन भूमिहीन मजदूरों को दी जाए (4) अनाज का समुचित वितरण तथा बढ़ती कीमतों पर नियंत्रण (5) गंदी बस्तियों का सुधार (6) 1948 के न्यूनतम वेतन कानून का पालन (7) संविधान द्वारा प्रदत्त अनुसूचित जातियों को सुविधाएं नवबौद्धों को भी दी जाएं (8) अछूतों का उत्पीड़न बंद हो (9) छुआछूत निवारण कानून के अन्तर्गत यथोचित लाभ दिलाया जाए (10) 1970 से पहले अनुसूचित जातियों के लिए निर्धारित सुरक्षित स्थानों की पूर्ति कर दी जाए।

इंदिरा गांधी ने कहा "गांधी जी के एक स्वप्न को साकार बनाने के लिए हरिजनों को शिक्षा सुविधाएं, रोजगार, व खेती की जमीन दी जाए और सुनिश्चित किया जाए कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोगों को अधिकार युक्त जगहों पर नियुक्त किया जाए जहां रहकर वे अपनी समस्याओं का स्वयं समाधान कर सकें।"

1969 में रिपब्लिकन पार्टी के दो भाग हो गए। बी० डी० खोबरगड़े तथा उनके साथी मुख्य दल से अलग हो गए। 1974 में दोनों दलों ने अपने मतभेद भुलाकर 15 सदस्यों का अध्यक्ष मण्डल बनाया। अक्तूबर 1974 में नागपुर अधिवेशन में अध्यक्ष मंडल भंग करके खोबरगड़े को निर्विरोध अध्यक्ष चुना गया। इसके बाद फिर दो दल हो गए। खोबरगड़े और गवई ग्रुप। नवम्बर 1975 में पार्टी के सातवें अधिवेशन में गवई को पार्टी का अध्यक्ष चुना गया।

आम्बेडकर की मृत्यु के तुरंत बाद पार्टी की फूट उभर कर सामने आ गई थी। आम्बेडकर जैसी महान हस्ती ही अपने दल के लोगों को एक सूत्र में बांधकर रख सकती थी। इस विभूति के उठ जाने से राजनैतिक द्वंद्व छिड़ गया और पार्टी खण्ड-खण्ड हो गई। फूट का कारण सिद्धांत न होकर नेतृत्व की महत्वकाक्षाएं थी। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो यह फूट न केवल इस पार्टी को ले बैठी बल्कि इससे तमाम दलित वर्ग की आशाओं पर पानी फिर गया।

यह एक ऐतिहासिक नियम है कि जब दो पक्षों के बीच में संघर्ष छिड़ता है,

जिसमें एक शक्ति सत्ता सम्पन्न और दूसरा केवल दृढ़ निश्चय के सहारे लड़ रहा हो तो अत्याचार के विरुद्ध लड़ने वाले पक्ष की विजय तभी संभव है जबकि उनमें सुदृढ़ एकता हो और उसके नेता सत्ता के भूखे होने के बजाय उत्पीड़न तथा अन्याय के विरुद्ध धर्म युद्ध की भावना लेकर लड़ें। यही कारण था कि आम्बेडकर के बाद इस पार्टी के नेताओं ने उपरोक्त सिद्धांत की अवहेलना करके जो एक दूसरे की टांग खींचने का तमाशा किया उसकी परिणति पार्टी की एकता भंग होकर सामने आई। यह उल्लेखनीय है कि पार्टी के कार्यकर्ता आम्बेडकर और दल के आदर्शों के प्रति निष्ठावान बने रहे। सत्ताधारी दल ने इस स्थिति का लाभ उठाया और जोड़तोड़ करके बहुत-से लोगों को अपने साथ मिला लिया। पार्टी के खण्डित अंगों को एक साथ जोड़ने की कोशिशें की गईं। इसके लिए कार्यकर्ताओं ने नेताओं पर काफी दबाव डाला। कुछ युवा लोगों ने कड़ी आलोचनात्मक राजनीति अपनाई और 'दलित पैंथर' का गठन कर लिया—जो महाराष्ट्र की उग्रवादी पार्टी है और जिसने युवा पीढ़ी को आकृष्ट किया।

दलित पैंथर

दलित पैंथर एक नया संगठन है, दर असल अभी यह सुगठित संगठन नहीं है, बल्कि एक लहर है।

इण्डिपेंडेंट लेबर पार्टी से लेकर रिपब्लिकन पार्टी तक की आम्बेडकर की यात्रा महत्वपूर्ण थी। आम्बेडकर के संसदीय लोकतंत्र में विश्वास, सांसदीय इतर कार्यवाहियों की नकारात्मक और अनुसूचित जातियों के लिए सत्ताधारी कांग्रेस से रिआयतों की याचना से युवकों में कुंठा कसमसाने लगी। नित्यप्रति अनुसूचित जातियों पर अत्याचार की घटनाओं की चर्चा होने लगी। 9 अगस्त 1970 को गृह-राज्य मंत्री श्री नाथूराम मिर्धा ने लोकसभा में बताया कि 1967-68 के दौरान 1 हजार 117 हरिजनों की हत्याएं हुईं। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि इन वर्गों के साथ कैसा अन्याय हो रहा है। समिति की रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि बंधुआ मजदूर प्रथा देश के कई भागों में जोरों पर है और इसके शिकार अधिकांशत: अनुसूचित जातियों के लोग ही हैं। शिक्षा की कमी और सरकारी नौकरियों में इन जातियों का नगण्य प्रतिनिधित्व कुंठा जगाने वाले भैरवनाद बनकर सामने आए। 1972 के मध्य महाराष्ट्र के ब्राह्मणगांव और बावदा में अछूतों पर जघन्य अत्याचारों की खबरों ने आग में घी का काम किया। ब्राह्मण गांव में दो हरिजन महिलाओं पर सवर्ण हिन्दुओं ने प्रहार किया। बावदा में उन्होंने हरिजनों का बायकाट कर दिया।

अनुसूचित जातियों की राजनीति में सजग युवकों के दिल इन घटनाओं के प्रति तथाकथित प्रगतिशील विचारों वाले लोगों की उदासीनता से दहल उठे। इन युवकों ने देखा कि समस्या की ओर ध्यान दिलाने के शांतिपूर्ण आंदोलन को जब निर्दयतापूर्वक दबा दिया गया, तो अनुसूचित जातियों की राष्ट्रीय प्रतीकों से आस्था उठ जाना स्वभाविक ही था। आम्बेडकर के आंदोलन को समाजवादी कहा गया लेकिन हिन्दुओं ने आम्बेडकर का समर्थन नहीं किया।

दलित पैंथर उन दलितों के आंदोलन के रूप में प्रकट हुआ जो रिपब्लिकन पार्टी और उसके नेताओं से निराश हो चुके थे। दलित का अर्थ लगाया गया—सभी शोषित और दबाए गए लोग चाहे उनका कोई भी धर्म या जाति क्यों न हो। उन्होंने धर्म के बंधन तोड़ दिए और दरिद्रों की समस्या के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल बजाया। उन्होंने हिन्दुओं के पुरातनवाद को धक्का मारकर रोटी कपड़ा और मकान की जरूरत जैसे जलते प्रश्न उठाए। वे दलितों को दी गई सुविधाओं से संतुष्ट नहीं थे। उनका कहना था कि बौद्ध धर्म अपनाने से अनुसूचित जातियों के लोगों की मानसिक और मनोवैज्ञानिक दासता समाप्त हो गई है। अनुसूचित जातियों की अन्य दलित जातियों के साथ एकता का आह्वान किया गया। साम्प्रदायिकता, जातिवाद, जमींदार, लोगों को दास बनाने वाले पूंजीपति, सरकार, प्रतिक्रियावादी दल और जनसंघ, शिवसेना, बुद्धसभा और हिन्दू महासभा जैसे संगठनों को इस आंदोलन का शत्रु घोषित किया गया। उनका कहना था कि दलितों की समस्या केवल क्रांति से हल हो सकती है।

दलित पैंथर आंदोलन का सूत्रपात मराठी साहित्यिक पत्रिकाओं से शुरू हुआ जिनका रुझान पूंजीवाद विरोधी और प्रगतिवादी था। यह आंदोलन नासिक, बम्बई और पूना में पनपा जो रिपब्लिकन पार्टी के गढ़ थे। इसकी गतिविधियां रिपब्लिकन पार्टी के अनुसूचित जातीय नेताओं के विरुद्ध प्रदर्शनों तक ही सीमित रही। अमरीकी नीग्रो लोगों ने 1950 के दशक में शांतिपूर्ण मार्ग का परित्याग कर जो ब्लैक पैंथर आंदोलन छेड़ा था, ऐसा लगता है भारत के अनुसूचित जातीय समुदाय ने भी वैसा ही संगठन बनाया। देश के उन भागों में जहां कम्युनिस्ट अपेक्षाकृत अधिक सबल हैं—जैसे पश्चिम बंगाल, केरल और आंध्रप्रदेश, वहां अनुसूचित जातियों का संघर्ष कुछ हद तक व्यापक वर्ग संघर्ष का अंग बन गया। अब तक इसके समर्थकों में असंगठित सर्वहारा वर्ग ही शामिल है।

1971 की जनगणना के आधार पर महाराष्ट्र में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 35 लाख थी। इस आबादी में 57 उपजातियां हैं जिनमें प्रमुख हैं महार (35 प्रतिशत)। स्पष्टतः दलित पैंथर महारों का संगठन है। यद्यपि आम्बेडकर ने अखिल

भारतीय स्तर पर अनुसूचित जातियों के नेता का स्वरूप प्राप्त कर लिया था किंतु महाराष्ट्र में उनका प्रभाव केवल महारों तक ही सीमित था। बौद्धधर्म अपनाने के उनके आह्वान का केवल महारों पर ही प्रभाव पड़ा। इसलिए इस राज्य में महार और बौद्ध एक दूसरे के पर्याय बन गए। महार-मंग और महार-चमार विद्वेष ने कटु रूप ग्रहण कर लिया क्योंकि अनुसूचित जातियों के लिए जो सुविधाएं सरकार ने जुटाई थीं उनका अधिकांश लाभ अपने राजनैतिक प्रभुत्व के कारण महारों ने ही उठाया। 1968-69 की अनुसूचित जातीय और जनजातीय आयोग की रिपोर्ट के अनुसार महाराष्ट्र में अ०जा० के लिए 1966-67 में दी गई छात्रवृत्तियों का 84 प्रतिशत और 1968-69 में 83 प्रतिशत महारों को मिला। इस तरह महार अन्य जातियों से दूर होते चले गए।

दलित पैंथर का उदय उन बड़े-बड़े शहरों में हुआ जहां महारों के गढ़ हैं जैसे बम्बई और पूना। उन्होंने यह धारणा बनाई कि दलित पैंथर एक राजनैतिक शक्ति है जो मौजूदा सामाजिक एवं राजनैतिक प्रणाली को बदल सकती है। अपने घोषणा पत्र में उन्होंने जो आदर्श प्रस्तुत किए, वे पूरा न कर सके क्योंकि यह अनुसूचित जातियों का ही दल रहा।

दलित पैंथर के उदय से रिपब्लिकन पार्टी के भिन्न-भिन्न गुट आपस में मिलने का प्रयत्न कर रहे हैं। अपने भाषणों में मुख्य नेताओं जैसे शांति बाई दानी और आर०एस० गवई ने कहा कि दलित पैंथर आंदोलन को कुचल दिया जाए। महारों को छोड़कर अनुसूचित जातियों के विधायक (कांग्रेसी) सोचते हैं कि दलित पैंथर रि०पा० के लिए एक सिर दर्द है।

दलित पैंथर के मुख्य उद्देश्य ये हैं: आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में हमारा वर्चस्व रहना चाहिए। हमें ब्राह्मणों की संगति पसंद नहीं। हम पूरे देश पर शासन करना चाहते हैं। केवल हृदय परिवर्तन और उदार शिक्षा से ही अन्याय और शोषण दूर नहीं हो सकते। हमें क्रांतिकारियों को जगाना और संगठित करना है। मात्र रिआयतों की मांग, चुनावों और सत्याग्रह से ही सामाजिक व्यवस्था नहीं बदल सकती।

घोषणा पत्र में आगे कहा गया है "आम्बेडकर ने अंतिम दिनों में अहसास किया कि जातिवाद पर आधारित राजनीति व्यर्थ है। इसी कारण उन्होंने शि० का० फे० भंग करके रि० पा० बनाई। दलित पैंथर बिके हुए रि० पा० के नेताओं के प्रति विद्रोह है। अ० जा०, जनजातियां, भूमिहीन मजदूर, गरीब किसान हमारे साथी हैं ... वे सब जो आर्थिक और राजनैतिक शोषित हैं। जमींदार पूंजीपति और उनके दलाल हमारे शत्रु हैं।" पत्र में बौद्ध धर्म को शोषण का प्रायश्चित नहीं बताया गया है। इस

आंदोलन की धारणा है कि अ० जा० की समस्याएं समाज में जातिग्रस्त, ऊंचनीच ग्रस्त ढांचे के अन्तर्गत नहीं सुलझ सकती।

इस संगठन के दो पक्ष हैं। एक का प्रयास है दलितों और शोषितों में सभी को सम्मिलित कर इसका दायरा बढ़ाना। इसका प्रेरणा स्रोत मार्क्सवाद है। दूसरे पक्ष को भय है कि कहीं हमारे अलग संगठन को सामान्य बना देने से इसका भी वही हाल न हो जाए जो अन्य क्रांतिकारी आंदोलनों का हुआ। इसने वर्तमान संसदीय संस्थाओं और व्यवस्थाओं का खण्डन किया है। यह रि० पा० को सत्ता लोलुपों की जमात मानता है। इनका विचार है कि आज की परिस्थितियों में हिन्दू सामंती शासन मुस्लिम और ब्रिटिश काल के शासनों से भी अधिक उत्पीड़क सिद्ध होगा क्योंकि उत्पादन, नौकरशाही, न्याय पालिका, सेवा और पुलिस इसकी मुठ्ठी में होंगे।

अनुसूची 3

चुने हुए संदर्भ ग्रंथों की सूची

1. आम्बेडकर कृत पुस्तकें

दी अनटचेबल्स, हू आर दे? एण्ड व्हाई दे बीकेम अनटचेबल्स. (अमृत बुक कंपनी, नई दिल्ली, 1948)

हू वर दी शुद्राज़? हाऊ दे केम टू बी दी फोरथ वर्णा इन दी इंडो आर्यन सोसायटी? (ठाकर एण्ड कंपनी, बम्बई, 1946)

बुद्धा एण्ड हिज़ धम्मा (पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी, डी० एन० रोड, बम्बई-1, 1957), वट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव डन टू दी अनटचेबल्स? (ठाकर एण्ड कंपनी लि०, बम्बई, 1945), पाकिस्तान ऑर पार्टिशन ऑफ इंडिया. (ठाकर एण्ड कंपनी लि०, बम्बई, III एडीशन, 1946), स्टेट्स एण्ड माइनरटीज. (ठाकर एण्ड कं० लि०, बम्बई, 1948)।

महाराष्ट्रा एज़ ए लिंग्युस्टिक प्रोविन्स (ठाकर एण्ड कं० लि० बम्बई, 1947)

थाट्स ऑन लिंग्युस्टिक स्टेट्स (बी० आर० आम्बेडकर, ब्लाइंड महाविद्यालय औरंगाबाद, 1955).

दी प्रोब्लम ऑफ दी रूपी: इट्स ओरीजिन एण्ड इट्स सॉल्यूशन (पी० एस० किंग एण्ड संस लि०, लंदन, 1923)

दी एवोलुशन ऑफ प्रोविंशियल फायनांस इन ब्रिटिश इंडिया (पी० एस० किंग एण्ड संस लि०, लंदन)

दी राइज़ एण्ड फॉल ऑफ दी हिन्दू वीमैन (डा० आम्बेडकर पब्लिकेशंज़ सोसायटी, हैदराबाद-20, 1965)

इमैनीसिपेशन ऑफ दी अनटचेबल्स. (ठाकर एण्ड कं० लि० बम्बई, 1943)

2. आम्बेडकर के व्याख्यान और लेख

कास्ट्स इन इंडिया: देयर जेनेसिज, मैकेनिज़्म एण्ड डवलपमैंट (इंडियन आंटीक्वेरी, वॉल्यूम 26, 1917).

एन्नीहिलेशन ऑफ कास्ट: विद ए रिप्लाई टू महात्मा गांधी. (एडरैस बीफोर दी एनुअल कांफ्रेंस ऑफ जात-पात-तोड़क मंडल, लाहौर, 1935).
ग्गीष बीफोर बौद्धा गैदरिंग (मराठी). रिप्रिंटिड फ्राम धर्मचक्र, 1951.
रानडे, गाधी एण्ड जिन्ना. (एड्रैस डिलीवर्ड ऑन दी वन हण्डर्ड फर्स्ट बर्थ सैलीब्रेशन ऑफ एम० जी० रानडे, ठाकर एण्ड कं० लि०, बम्बई 1943).
फैडरेशन वसर्स फ्रीडम. (काले मेमोरियल लैक्चर, गोखले इंस्टीट्यूट ऑफ पालिटिक्स एण्ड इकानोमिक्स, पूना-4, 1939).
ऑन पार्लियामैंट्री डैमोक्रेसी. (आन० सैक्रेट्री० पूना डिस्ट्रिक्ट लॉ लाइब्रेरी, पूना-5, 1952)
स्माल होल्डिंग्ज इन इंडिया एंड देयर रैमीडीज. (ए पेपर पब्लिश्ड इन "दी जरनल ऑफ इंडियन इकानोमिक सोसायटी", 1918).
जी० आई० पी० रेलवे डिप्रेस्ड क्लास वर्कमैन्स कांफ्रेंस, मनमाड, 1938.
एड्रैस टू सैशन ऑफ ए० आई० एस० सी० एफ०, कम्युनल डैडलॉक एण्ड ए वे टू साल्व इट (बम्बई, 1945).
लेबर एंड पार्लियामेंट्री डैमोक्रेसी (1943).
दास भगवान, दस स्पोक आम्बेडकर, वॉल्यूम। (स्पीचिज) (1963).
बुद्धिज़्म एण्ड कम्युनिज़्म (स्पीच) 1956.

3. आम्बेडकर पर लिखी गई पुस्तकें

कीयर धननंज्य—आम्बेडकर: लाइफ एण्ड मिशन—(बायोग्राफी) (पापूलर प्रकाशन, बम्बई-34, II एडीशन, 1961).
जीनेट राबिन—डा० आम्बेडकर एण्ड हिज मूवमैंट—(डा० आम्बेडकर पब्लिकेशंज सोसायटी, हैदराबाद 20, 1964).
शांती देवा एण्ड सी० एम० वाघ—डा० आम्बेडकर एण्ड कनवरशन—(डा० आम्बेडकर पब्लिकेशंज सोसायटी, हैदराबाद, 20, 1965).
डा० ए० एम० राजाशेखरिया—दी पालिटिक्स ऑफ इमैनीसिपैशन—(सिंधु पब्लिकेशंज, बम्बई-1).
डा० डी० आर० जाटव—दी पार्लिटिकल फिलास्पी ऑफ बी० आर० आम्बेडकर.
डा० डी० आर० जाटव—दी सोशल फिलास्फी ऑफ बी० आर० आम्बेडकर, 1965.
डा० डब्लयू० एन० कुबेर—डा० आम्बेडकर—ए क्रीटिकल स्टडी—पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1973.

4. अन्य लेखकों द्वारा लिखी गई पुस्तकें (अंग्रेजी)

अय्यर एस० पी० एण्ड ऊषा मेहता—एस्सेस आन इंडियन फैडरेशन—(एलाइड पब्लिशर्ज; बम्बई, 1965).

आम्बेडकर एण्ड ठाकर—एबोरिजीनल्स क्राई इन दी विल्डरनैस—ए कंट्रोवर्सी (ए० वी० ठाकर, सरवैंट्स ऑफ इंडिया सोसायटी, बम्बई-4, 1945).

बैनर्जी, डी० एन०—सम एस्पैक्ट्स ऑफ दी इंडियन कांस्टीच्यूशन—(एस० भट्टाचार्य फॉर दी वर्ल्ड प्रेस प्राइवेट लि० कलकत्ता-2, 1962).

बैनर्जी, डा० ए० सी०—दी मेकिंग ऑफ दी इंडियन कांस्टीटूयशन—(ए० आर० मुखर्जी, कलकत्ता 1948).

भगत, एम० जी०—अनटचेबल क्लासिज़ ऑफ महाराष्ट्रा (1942)

बर्ड, चार्ल्स ए—इकानोमिक इंटरप्रीटेशन ऑफ दी कांस्टीटूयशन.

भट्ट, वमनराय ए—दी हरिजन्स ऑफ महाराष्ट्रा.

चागला, एम० सी०—दी इंडीजुअल एण्ड दी स्टेट (एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई, 1961).

कुंडु, मिसेज रंजीता—दी डिवीज़न ऑफ पावरज़ इन दी इंडियन कांस्टीच्यूशन—(बुकलैंड प्राइवेट लि० कलकत्ता, मई, 1964).

कूपलैंड, आर०—दी कांस्टीच्यूशनल प्राब्लम इन इंडिया, पार्ट I, II एण्ड III—(आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1945).

डाम्ले, वाई० बी०—कास्ट इन महाराष्ट्रा

डाश, एस० सी०—दी कांस्टीच्यूशन ऑफ इंडिया, ए कम्पैरेटिव स्टडी—(चैतन्य पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद-2, 1960).

देसाई, ए० आर०—सोशल बैकग्राउंड ऑफ इंडियन नैशनलिज़्म—(पॉपुलर बुक डिपो, बम्बई-7, 1959).

धवन, गोपीनाथ—दी पालिटिक्ल फिलोस्फी ऑफ महात्मा गांधी—(नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद-14, 1954).

देसाई, महादेव—दी डेरी ऑफ महादेव देसाई—(नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद-14, 1932).

दत्त, आर० पी०—इंडिया टुडे—(पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई, 1947).

डे रेनकोर्ट—दी सोल ऑफ इंडिया—(हारपर एंड ब्रदर्स, न्यूयार्क, 1960).

दास, एम० एन०—दी पालिटिक्ल फिलॉस्फी ऑफ जे० एल० नेहरू, 1961.

देवगिरिकर, टी० आर०—टुवैल्व ईयरस इन पार्लियामेंट—डैमोक्रेसी इन एक्शन (चित्रशाला प्रकाशन, पूना-2, 1964)

धुरे, जी० एस०—कास्ट एण्ड क्लास इन इंडिया—(पॉपुलर बुक डिपो, बम्बई-7, ॥ एडीशन, 1957).

ग्वायर, सर मौरिस एण्ड ए० अपाडोराय—स्पीचिज़ एण्ड डाकूमैंट्स आन दी इंडियन कांस्टीच्यूशन (1921-1947)—आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957).

ग्रीफिथ्स, सर परसीवाल—दी ब्रिटिश इम्पैक्ट आन इंडिया—(मैक्डोनाल्ड, लंदन, 1952).

ग्रीफिथ्स, सर परसीवाल—माडर्न इंडिया (न्यूयार्क, प्रायगर, 1954).

ग्लेढिल, एलन—फंडामैंटल राइट्स इन इंडिया—(लंदन, 1955).

ग्लेढिल, एलन—दी रिपब्लिक ऑफ इंडिया

घोष, पी० के०—दी कांस्टीच्यूशन ऑफ इंडिया—हाऊ इट हैज बीन फेम्ड—(दी वर्ल्ड प्रेस प्राइवेट लि०, कलकत्ता-1966).

हैरीसन, सेलिग एस०—इंडिया : दी मोस्ट डेंजरस डिकेड्स—(ओक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1965).

हेमसाथ, चार्ल्स एच०—इंडियन नेशनलिज़्म एण्ड हिन्दू सोशल रिफॉर्म—(प्रिंसटन यूनीवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, न्यू जर्सी, 1964).

हिंगोरानी, ए० टी०—टू दी प्रोटैगोनिस्ट्स ऑफ पाकिस्तान—(आनन्द टी० हिंगोरानी, कराची, 1947).

हूटन, जे० एच०—कास्ट इन इंडिया, इट्स नेचर, फंक्शन एण्ड ओरिजिन्स—आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, बम्बई-1, ॥। एडीशन, 1961).

इंडियन एनुअल रजिस्टर.

जैनिंग्स, सर डब्लयू० आईवर—सम कैरेक्टरिस्टिक्स ऑफ दी इंडियन कांस्टीच्यूशन—(मद्रास, 1953).

केटकर, डा० एस० वी०—दी हिस्ट्री ऑफ कास्ट इन इंडिया—(मैसर्ज टेलर एण्ड कारपेंटर, बुकसैल्लर्स एण्ड पब्लिशिर्ज, इथाका, न्यूयार्क, 1909).

कागेकर एण्ड पार्के—रिपोर्ट्स ऑन दी इंडियन जनरल इलैक्शंज 1951-52—(पॉपुलर बुक डिपो, बम्बई, 1956).

कैथ, ए० बी०—कांस्टीच्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, 1961.

कीसिंग्ज आर्काइविज, 1952-1964.

कीर धननंजय—महात्मा ज्योतिराव फूले—फादर ऑफ सोशल रिवाल्यूशन—(पॉपुलर प्रकाशन, बम्बई, 1965).

लूथरा, वेद प्रकाश—दी कंसैप्ट ऑफ दी सैक्यूलर स्टेट एण्ड इंडिया—(आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता, 1964)

लिच, ओ०—दी पॉलिटिक्स ऑफ अनटचेबिलिटी।

महादेव प्रसाद—सोशल फिलॉस्फी ऑफ महात्मा गांधी—(विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, 1958).

मकीम मैरीयट—विलेज इंडिया—(दी यूनीवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो इल्लिनाइस, यू० एस० ए०, 1956).

मैनन, वी० पी०—दी ट्रांसफर ऑफ पावर इन इंडिया—(ओरियंट लोंगमेंस, बम्बई, 1957).

मैनन, वी० पी०—दी स्टोरी ऑफ इंटैग्रेशन ऑफ इंडियन स्टेट्स—(मैकमिलन).

मारिस जान्स—पार्लियामेंट इन इंडिया—(यूनीवर्सिटी ऑफ पैंसिलवानिया प्रेस, 1957)

मेहता, अशोका—दी पॉलिटिकल माइंड ऑफ इंडिया—(पी० एस० पार्टी, बम्बई, 1952).

मार्क्स एण्ड एंजल्स—आन रिलीजन (1957).

मुखर्जी, डी० पी०—माड्र्न इंडिया कल्चर, (1948)

मूर्ति, बी० एस०—डिप्रेस्ड एंड ऑप्रैस्ड.

मार्कण्डन, डा० के० सी०—डायरक्टिव प्रिंसिपल्स इन दी इंडियन कांस्टीच्यूशन—(एलाइड पब्लिशर्स, बम्बई, 1966).

नायर, बालकृष्णा एम०—दी डायनमिक ब्राहमिन—(दी पॉपुलर बुक डिपो, बम्बई-7, 1959).

नटराजन—इंडियन पार्टीज एण्ड पॉलिटिक्स—ए सैंचरी ऑफ सोशल रिफार्म्स इन इंडिया.

नेहरू, जवाहरलाल—डिस्कवरी ऑफ इंडिया-(जान डे, न्यूयार्क, 1946).

नरसु, पी० एल०—दी एसेंस ऑफ बुद्धिज़्म—(विद ए प्रीफेस बाई डा० बी० आर० आम्बेडकर, 1949).

ओ'मैबक्ले, एल० एस० एस०—माडर्न इंडिया एण्ड दी वेस्ट—(आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1941).

ओवरस्ट्रीट, जीन डी० एण्ड इरेन टिंकर—पॉलिटिकल डायनामिक्स इन इंडिया—(बैरकले यू० एस० ए०, 1957).

पालमेर, एन० डी—दी इंडियन पॉलिटिकल सिस्टम—(जार्ज एलेन एण्ड अनविन लि०, लंदन, 1961).

पानीकर, के० एम०—कास्ट एण्ड डैमोक्रेसी—(लियोनार्ड एण्ड वर्जिना वुल्फ एट दी हागर प्रेस, लंदन, 1933).
पानीकर, के० एम०—दी फांउंडेशन ऑफ न्यू इंडिया—(जार्ज एलेन एण्ड अनविन लि० लंदन, 1963).
प्रसाद, डा० राजेन्द्रा—इंडिया डिवाइडिड—(हिन्द किताब्स, पब्लिशर्स, बम्बई, 1946).
पीली, एम० वी०—कांस्टीच्यूशनल गवर्नमैंट इन इंडिया—(एशिया पब्लिशिंग हाउस-बम्बई, 1960).
प्रधान, जी० आर०—अनटचेबल वकर्स ऑफ बम्बई सिटी—(कर्नाटक पब्लिशिंग हाउस, बम्बई-2, 1938).
पार्क एण्ड टिंकर—लीडरशिप एण्ड पॉलिटिकल इंस्टीट्यूशंज इन इंडिया—(आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1960).
पंजाबी, के० एल०—दी इंडोमीटेबल सरदार.
प्रभु, पी० एन०—हिन्दू सोशल आरगेनाइजेशन, 1954.
राजगोपालाचारी सी०—आम्बेडकर रिफ्यूटिड—(हिंद किताब्स, बम्बई, 1946).
राजाजी सी०—आवर डैमोक्रेसी.
राव, डा० के० वी०—पार्लियामैंट्री डेमोक्रेसी ऑफ इंडिया—(दी वर्ल्ड प्रेस प्राइवेट लि०, कलकत्ता, 1961).
राबर्टसन, अलैक्जैंडर—दी मेहर फाल्क—(वाई ० एम० सी० ए० पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1938).
राउ, बी० एन०—इंडियाज़ कांस्टीच्यूशन इन दी मेकिंग.
रामगोपाल—इंडियन मुस्लिम्स.
राबर्टसन,, ए०—दी महार्स, (आक्सफोर्ड).
संथानम, के०—आम्बेडकर अटैक—(दी हिंदुस्तान प्रेस, नई दिल्ली, 1946).
संथानम, के०—यूनियन-स्टेट रिलेशंज़.
संजाना, जे० ई०—कास्ट एण्ड आउटकास्ट—(ठाकर एण्ड कम्पनी लि०, बम्बई, 1946).
सेनार्ट, एमली—कास्ट इन इंडिया—(मैथ्यून एण्ड कम्पनी लि०, लंदन, 1929).
शर्मा, आर० एस०—शुद्राज इन एनशियंट इंडिया—(मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-6, 1958).
शर्मा, बी० एम०—दी रिपब्लिक ऑफ इंडिया (एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1966).
शीयन, विंसेंट—नेहरू : दी ईयरर्स ऑफ पावर—(विक्टर कोलापोज़) (लंदन, 1960)

इटीरामैया, डा० बी० पट्टाभी—दी हिस्ट्री ऑफ दी कांग्रेस—वाल्यूम-I, (कांग्रेस कमेटी, इलाहाबाद, 1935).

स्मिथ, डोनाल्ड यूजीन—इंडिया एस ए सैक्यूलर स्टेट—(प्रिंसिटन यूनीवर्सिटी प्रेस, लंदन एण्ड बम्बई, 1963).

श्रीनिवास, एम० एन०—कास्ट्स इन माडर्न इंडिया एण्ड अदर एस्सेज़—(एशिया पब्लिसिंग हाउस, बम्बई, 1962). सोशल चेंज इन मार्डन इंडिया।

सिंह, त्रिलोचन—इंडियन पार्लियामेंट (1952-1957)—नई दिल्ली, 1964

स्मिथ—माडर्न इस्लाम इन इंडिया, 1946.

सीतलवाड, चिमनलाल—रिकलैक्शंज़ एण्ड रिफ्लैक्शंज.

सीतारमैया, पी० बी०—नेशनलिस्ट मूवमैंट इन इंडिया.

सुधा, जे० पी०—इंडियन कांस्टीच्यूशनल डेवैलपमैंट एण्ड नैशनल डेवैलपमैंट्स 1951.

तेंदुलकर, डी० जी०—महात्मा—लाइफ ऑफ मोहनदास कर्मचंद गांधी—(वी० के० झावेरी एण्ड डी० जी० तेंदुलकर, 64 वाकेश्वर रोड, बम्बई, 1952).

तोपे, प्रिंसिपल टी० के०—दी कांस्टीच्यूशन ऑफ इंडिया—(पॉपुलर प्रकाशन, बम्बई-34, 1963).

टकाकसु, आई०—दी एसेन्शियल्स ऑफ बुद्धिस्ट फिलौस्फी, 1956).

ताराचंद—इन्फ्लूयंस ऑफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर, 1954.

यूनूस्कोस पब्लिकेशन—इंटर रिलेशंज ऑफ कल्चरस, 1960.

वच्छा पी० बी०—फेमस जजिंज, लायर्स एण्ड केसिस ऑफ बम्बई—(एन० एम० त्रिपाठी प्राइवेट लि०, बम्बई, 1962).

वेनर, माइरन—पार्टी पॉलिटिक्स इन इंडिया : दी डेवलपमैंट टू मल्टीपार्टी सिस्टम—(प्रिंसिटन यूनीवर्सिटी प्रेस, प्रिंसिटन, 1957).

वम, थिडोरे डे बैरी—सोरसिस ऑफ इंडियन ट्रेडीशन—(कोलम्बिया यूनीवर्सिटी प्रेस, 1958).

वेस्टकाट, जी० एच०—कबीर एण्ड दी कबीर पंथ, 1953.

यसीन मोहम्मद—ए सोशल हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक इंडिया, 1958.

काम्बले, बी० सी०—ए केस ऑफ इंडियन बुद्धिस्ट्स फॉर देयर सेफगार्ड्स—(पब्लिश्ड बाई दी ऑथर, 1965).

राय, डा० अमल—इटर-गर्वनमैंटल रिलेशंज इन इंडिया—(एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1967).

राय, एन० सी०—फैडरेलिज्म एण्ड लिंग्युस्टिक स्टेट्स—(के० एल० मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1962).

मिश्रा, डा० बी० आर०—इकानॉमिक एस्पैक्ट्स ऑफ इंडिया कांस्टीच्यूशन—(ऑरियंट लोंगमैन्स, बम्बई, 1953).

मुकर्जी, के० पी०—रीआरगेनाइजेशन ऑफ इंडियन स्टेट्स—(पॉपुलर प्रकाशन, बम्बई, 1955).

पटवर्धन सुनन्दा—चेंज, अमंग इंडियाज़ हरिजंस इन महाराष्ट्रा—ए केस स्टडी.

विलकिसन टी० एस० एण्ड थोरास एम० एम०—आम्बेडकर एण्ड दी नियो बुद्धिस्ट मूवमैंट.

आईजैक हैरल्ड—आर० इंडियाज़ एक्स अनटचेबल्स.

कोठारी रजनी (ई० डी०), कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स.

नामरकर वी० वी०—जेनेसिस ऑफ पाकिस्तान.

दुस्किन, लेला—दी पॉलिसी ऑफ दी इंडियन नैशनल कांग्रेस टुवार्ड्स दी डिप्रैस्ड क्लासिज़.

बालभुशेविक एण्ड डयाकोव—ए कंटम्परेरी हिस्ट्री ऑफ इंडिया—पी० पी० एच० नई दिल्ली.

भंडारे, आर० डी०—दी प्राब्लम ऑफ दी इंडियन बुद्धिस्ट्स.

भोले, आर० आर०—एन अनटचेबल स्पीक्स.

फरकूहर, जे० एन०—मार्डन रिलिजियस मूवमेंट्स इन इंडिया.

5. अन्य लेखकों द्वारा मराठी में लिखित पुस्तके

महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश—खंड 3 व 7 संपादक—डा० श्री व्यं: केतकर

पर्वते यं० वि०—मी घेतलेल्या मुलाखती.

केलकर न० वि०—टिलिकचरित्र

जावलकर दिनकरराव—देशाचे दुष्मन.

प्रेमा कंटक—सत्याग्रही महाराष्ट्र

देसाई—मोठयांच्या मुलाखती

अत्रे प्र० के०—मराठी माणसें मराठी मनें.

वि० रा० शिंदे—भारतीय अस्पृश्यतेचा प्रश्न (नवभारत ग्रंथमाला नागरपुर, 1933).

श्री म० माटे—अस्पृष्टांचा प्रश्न.

दांडेकर वि० पां०—सयाजीराव गायकवाड यांचे चरित्र (ठोकल प्रकाशन, पुणे-2).

ज्योतिरावफुले ग्रंथ, (अधिकारी प्रकाशन, पुणे-2).

मुगुढकर डा० मा० पां०—महात्मा फुले सत्यशोधक चलवत्र

मुगुढकर, डा० मा० पां०—महाराष्ट्रातील लोकशाही विचार—डा० अम्बेडकर व्याख्यानमाला औरंगाबाद.

सरदार गं० बा०—महाराष्ट्राचे उपेक्षित मानकरी.
सरदार गं० बा०—महाराष्ट्र—जीवन (जोशी लोखंडे प्रकाशन, पुणे-2, 1960).
सरदार गं० बा०—संक्रमणकाला चे आह्वान (जोशी लोखंडें प्रकाशन, पुणे-2, 1966)
ग० के० घोरपडे—आंबेडकर यांचे चरित्र.
दा० न० शिखरे—आंबेडकर यांचे चरित्र.
खरात, शंकरराव—अस्पृश्यांचा मुक्तिसंग्राम (जोशी लोखंडे प्रकाशन, पुणे-2).
खरात, शंकरराव—डा० बाबासाहेब आंबेडकर धर्मांतर (भारतीय बौद्धधांचे आंदोलन ठोकल प्रकाशन, पुणे-4, 1966)
खरात शंकरराव—(संपादक) डा० बाबासाहेब आंबेडकर पत्रे० (ग० ल० ठोकल, प्रकाशन, पुणे-2, 1964).
खरात शंकरराव—डा० बाबासाहेब आंबेडकरांच्या सहवासात (ठोकल प्रकाशन, पुणे-2, 1964).
खैरमोडे सी० बी०—डा०आम्बेडकर चरित्र, भाग 3 (वाय बी० आम्बेडकर भारत-भूषण प्रिंटिंग प्रेस, मुंबई-14, 1952 व 1965).
विरवे वि० न०—मानवधर्म विवेचन (महाराष्ट्र हरिजन सेवक संघ, धुलें).
देशमुख बें० गो० वि०—गोबिंद गोपाल (आठवाणी) नरेंद्र प्रकाशन, पुणे-4, 1964).
पंडित प्रा० नलिनी—महाराष्ट्रातील राष्ट्रवादाचा विकास, 1955.
पंडित प्रा० नलिनी—जातिवाद आणि वर्गवाद—(साधना प्रकाशन, पुणे-2, 1967).
फाटक प्रा० न० र०—भारतीय राष्ट्वादाचा विकास (र० ग० जोशी, टिलकपथ, पुणे-2, 1949).
डा० बाबासाहेब आंबेडकरांनी केलेली भारतीय घटनेची मीमांसा.
मीमांसा संपादक—बी० सी० कांवले, वरली, मुंबई-18, (1966).
डा० आंबेडकर—भाऊराव मापकवाड यांना पत्रे.

पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांक

नवयुग (मराठी), (संपादक : पी० के० अत्रे, बम्बई, 13 अप्रैल, 1947).
जनता—आम्बेडकर विशेषांक (मराठी), संपादक के० वी० सावदकर, बम्बई, 14 अप्रैल, 1942).
दलितबंधु (मराठी) (संपादक पी० एन० राजभोज, पूना, 15 अप्रैल, 1948).
प्रबुद्ध भारत (मराठी), (संपादक वाई० बी० आम्बेडकर बम्बई, अप्रैल, 1956).

प्रबुद्ध भारत (मराठी), महानिर्वाण नम्बर (संपादक वाई० बी० आम्बेडकर, बम्बई, जनवरी, 1957).

प्रबुद्ध भारत (मराठी), (संपादक वाई० बी० आम्बेडकर, बम्बई, 27 अक्तूबर, 1956).

डा० बाबासाहेब आम्बेडकर—कालेज ऑफ आर्ट्स, साइंस एण्ड कामर्स, महाड़ डिस्ट्रिक्ट कोलाबा, मैगजीन, मार्च, 1962, 1962-63 एण्ड 1963-64.

7. प्रतिवेदन और अन्य दस्तावेजी कार्यवाहियां

रिपोर्ट ऑफ दी फ्रैंचिज़ कमेटी (1918-1919) (चेयरमैन : लार्ड साऊथ बोरो).
रिपोर्ट ऑफ दी इंडियन स्टैचूटरी कमीशन (साइमन), 1928.
रिपोर्ट ऑफ दी ऑल पार्टीज कांफ्रेंस (नेहरू रिपोर्ट), 1928.
रिपोर्ट्स ऑफ दी रायल कमीशन ऑन लेबर, 1931.
रिपोर्ट ऑफ दी इंडियन राउंड टेबुल कांफ्रेंसिज़ (1930-33).
लैजिस्लेटिव कौंसिल डिबेट्स, बम्बई, 1927-30.
लैजिस्लेटिव कौंसिल डिबेट्स, बम्बई, 1937-39.
रिपोर्ट : इंडिया लेबर डिपार्टमैंट स्टैंडिंग कमेटी, 1945.
कांस्टीट्यूअंट असेम्बली डिबेट्स, 14 वाल्यूम्स.
सपरू कमेटी रिपोर्ट—(कांस्टीच्यूशनल प्रोपोज़ल्स), 1945.
रिपोर्ट ऑफ दी सलैक्ट कमेटी ऑन हिन्दू कोड बिल, 1948.
लोकसभा डिबेट्स, 1947-1951.
राज्यसभा डिबेट्स 1952-56.
रिपोर्ट ऑफ दी टैक्सेशन इंक्वायरी कमीशन (जान मथाई).
स्टेट्स रीआरगेनाइजेशन कमीशन रिपोर्ट, 1955.
गवर्नमैंट ऑफ इंडिया : बैकवार्ड क्लासिज़ कमीशन, (3 खंड).

8. अभिलेख, पाण्डुलिपियां आदि

बम्बई यूनीवर्सिटी लाइब्रेरी, आम्बेडकर कलैक्शंज.

आधुनिक भारत के निर्माता

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार